

श्रीस्वामी तेजनाथ जी।



हिज हाइनेस लैफ्टिनैंट जैनरल श्री महाराजा सर प्रताप सिंह साहिब बहादुर जी० सी० ऐस० आई०, जी० सी० आई० ई०
जम्मू व कश्मीर।

ॐ

# * आत्मेक्षणप्रमाणार्कः *

श्रीहरिद्वारे पातञ्जलाश्रमनिवासिना
स्वामितेजोनाथेन विरचितः ।

सच

श्रीजम्बूकश्मीराधिपति श्री १०८श्रीमन्महाराजप्रतापसिंह
महानुभावेन जम्बूराजधान्यां स्वीयरणवीरप्रकाश
मुद्रणालये दीवान आलिमचन्द्र जी० सी०
सुपरिण्टैण्डैण्टाधिकारेण मुद्रापयित्वा
प्रकाशितः ॥



१६ आषाढे १९७४ वैक्रमाब्दे ।

१००० प्रति ।

प्रथमावृत्तिः

ओम् तत्सत् ॥

# भूमिकाप्रस्तावः ।

'परमात्मदेवके साक्षात्कारसें 'कैवल्य' मोक्षहोताहै' यिह वेदोंका तथा मोक्षशास्त्रनका सिद्धान्तहै सो ब्रह्मसाक्षात्कार वेदान्तवाक्यनके श्रवणसें मननसें उदय होसक्ताहै इसलिये विजातीयवृत्तिके व्यवधानरहित ब्रह्माकार सजातीयवृत्तिओंके प्रवाहरूप निदिध्यासनके अर्थात् ध्यानके अभ्यासकी कुछ अपेक्षानहिं ऐसे केइंक असम्यक्विवेकीपुरुष कहितेहैं सो तिनका कथन तो उपनिषदादिप्रबळप्रमाणोंसें तथा दृढयुक्तिओंसें विरुद्ध है अतः असत्यहिहै किंतु निदिध्यासनकी परिपक्वावस्थारूप समाधिसेंहि आत्मप्रत्यक्षहोताहै सो सूक्ष्मतमआत्माका साक्षात्कार सम्प्रज्ञात योगरूपहिहोवेहै यिहीअर्थ सत्यहै तथापि इसअर्थकी सत्यताके निर्णयलिये उपनिषदादिप्रबळप्रमाणोंके अर दृढ युक्तिओंके निरूपणकी आवश्यकताथी इसलिये इस आत्मेक्षण प्रमाणार्कग्रन्थके रचनमें यत्न कियागिया ॥

'आत्मईक्षणके' कहिये आत्मसाक्षात्कारके करणरूप प्रमाणका सूर्यकीन्यांई अभिव्यञ्जकहोनेतें इसग्रन्थका नाम

आत्मेक्षणप्रमाणार्कहै व्यापारसें भिन्न जो व्यवधानरहित साक्षात् साधनहोवे सो करण कहिलाताहै ॥

विदितरहै कि—

१—किसीएकपदार्थमें बिलक्षणवृत्तिके व्यवधानसहित जो सदृशवृत्तिओंका प्रवाह सो धारणा कहियेहै ॥

२—तिसीपदार्थमें धारणाके बहुकाल अभ्याससें जब विलक्षण वृत्ति के व्यवधानरहित सदृशवृत्तिओंका प्रवाह ध्याताकी अर सदृशवृत्तिओंके प्रवाहरूप ध्यानकी स्फूर्तिसहितहोवे तब सो ऐसा सदृशवृत्तिओंका प्रवाह ध्यानपदका अर्थहै ॥

३—दीर्घकालअभ्याससें सोईध्यान जब ध्याताकी अर ध्यान की स्फूर्तिसेंरहितहोवे तो सो अष्टमांगसमाधि कहिलाताहै ऐसी धारणा ध्यान समाधिअवस्थाओंमें जो ध्येयाकार सदृशवृत्तिआं होतीहैं वोवृत्तिआं ध्येयपदार्थके परोक्षज्ञान रूप होती ह ॥

४—पुनः दीर्घकालअभ्याससें जब यिह समाधि बहुतकाल स्थिररहै तो सो सम्प्रज्ञातसमाधि व सम्प्रज्ञात योग कहाजाताहै सो अष्टमाङ्गसमाधि साधनहै अर यिह सम्प्रज्ञातयोग ताका फलहै इस सम्प्रज्ञातयोगावस्थामें जो ध्येयमात्राकार वृत्तिआं होतीहैं सो ध्येयके प्रत्यक्षज्ञान रूप होवेहैं ॥

परमात्मामें निदिध्यासनकी परिपक्वावस्थारूप अष्टमांग समाधिके अभ्यासजन्य आत्मसाक्षात्कार सम्प्रज्ञातसमाधिरूप हिहोताहै परमात्मदेवमें ऐसे सम्प्रज्ञातसमाधिका नाम धर्ममेघ समाधिहै ॥

हेभ्रातृगण अनेकजन्मोंमें कृतपुण्यपुञ्जरूपहेतुसें विचार उदयहुए जन्म, व्याधि, परतन्त्रता, जरा, मृत्यु आदिरूप भयङ्कर दृश्यमान संसारसमुद्रतें भयकंपितहृदय मुमुक्षुपुरुषका रक्षक सोएक आत्मसाक्षात्कारहिहै अर्थात् सो समाधिजन्य आत्म प्रत्यक्ष हि मुमुक्षुपुरुषकूं 'पारनेताहै' भयंकरसंसारसागरतें निःशेष दुःखरहित भूमानन्दमय पारभूमिमें प्राप्तकर्ताहै ॥

ऐसे परमात्मसाक्षात्कारकूं प्राप्तहुआ जीवन्मुक्त महानुभाव पूज्यपादपुरुष यिहलोक परलोक जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति आदि सर्वअर्थोंमें स्वतन्त्रहोताहै ॥

हेभ्रातृजन वेदशास्त्र इतिहास पुराणादिकोंमें तथा अन्यत्र भी सत्यकी महिमा प्रसिद्धहिहै क्युंकि सुनिये—

नसासभायत्रनसन्तिवृद्धा
वृद्धानतेयेनवदन्तिधर्मम् ।
धर्मोनवैयत्रचनास्तिसत्यं
सत्यंनतद्यच्छलनानुविद्धम् ॥

अर्थ—सो सभानहिं जहां बृद्धनहिं । सो बृद्ध नहिं जो धर्मकूं नहिंकथनकर्ते । सो धर्म नहिं जहां सत्य नहिंहै अर्थात् सत्यभाषणसहितहि विहितकर्मोंसें धर्मउदयहोताहै । सो सत्य नहिं जो छलसें मिलाहुआहै ॥

'सत्यादुत्पद्यतेधर्मः'

सत्यसें धर्मकी उत्पत्तिहोवेहै अतः सर्वधर्मोंका मूल सत्यह इससें सर्वधर्मवेता विद्वज्जनोंको सत्यअर्थका हि प्रचार करणा योग्यहै ॥

नहिंअसत्यसमपातकपुंजा ।
किदोंकिगिरिसमकोटिकगुंजा ॥

होर पाप रतिओंके समानहैं और असत्यरूपपाप पर्वतके समानहै । कोटिक रतिआंभी क्या एक पर्वतके बराबर होसकी हैं एवं होर अनेकपापोंके पुञ्जभी एकअसत्यके तुल्य नहिंहोते अतः युक्तिप्रमाणनिपुण धर्मवित् धर्मनिष्ठ विद्वज्जनोंको असत्य अर्थका *तिरोभावकरणा दूरकरणा योग्यहै वासिष्ठमें कहाहै—

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनंबालकादपि ।
अन्यत्तृणमिवत्याज्य मप्युक्तंपद्मजन्मना ॥

---

* निरादर

अर्थ—बालकतेंभी युक्तियुक्त वाक्यकूं ग्रहणकरलेना चाहिये ब्रह्मानेंभी कथनकरा 'अन्यत्' युक्तिहीन वाक्य बुद्धिमानों ने त्यागदेना चाहिये इससें इस 'आत्मेक्षणप्रमाणार्क' में जिस अर्थकूं मैं लिखताहुं सो दृढयुक्तिओंसें तथा प्रबलप्रमाणोंके प्रवाहसें सिद्धहै निर्णीतहै अतः सत्यअर्थहै अतः हेभ्रातृगण विद्वज्जना प्रार्थनाकर्ताहुं कि इसकूं सम्यक्विचारके आपनेभी इससत्यअर्थका मुमुक्षुजनोंमें प्रचार करणा उचितहै क्युंकि सत्यअर्थसेंहि सत्यफल प्राप्तहोताहै अर्थात् निदिध्यासनकी परि-पाकावस्थारूप समाधिजन्य परमात्मदेवके साक्षात्कारसेंहि 'कैवल्य' मोक्षफल प्राप्तहोताहै इति ॥

श्रीगणनाथाय नमोनमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमोनमः

दो० ध्यावों मैं परमातमसोई । जादर्शनसें परसुखहोई ॥
अरहैसर्वअनर्थविनाशा । अरु स्वतन्त्रता होतप्रकशा ॥

अथ निर्विघ्न ग्रन्थकी समाप्तिलिये प्रथम मङ्गलश्लोक कहियेहै ॥

ॐध्यायामीक्षणाद्यस्य पूर्णानन्दात्मसंस्थितिः ॥
सर्वानर्थ निवृत्तिश्च सर्वार्थेषु स्वतन्त्रता ॥ १

टीका—ॐपरमात्मा का मैं ध्यान कर्ता हूं जिस परमात्मा के साक्षात्कारतें पूर्णानन्दरूप सें स्थितिहोती है और अनर्थों के बाज रूप अविद्यादिकों के क्षय होने द्वारा जन्म जरा व्याधि मृत्यु आदिक सर्व अनर्थों की निवृत्ति होजाती है और यह लोक परलोक जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति आदिक सर्व अर्थो में स्वतन्त्रता होवेहै ॥

यिह अथर्ववेदकी मुण्डक उपनिषद मेंभी कहाहै—

यंयंलोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयतेयांश्चकामान्
तंतंलोकं जयते तांश्चकामां
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः

मु० ३ खण्ड १ म० १० ॥

टीका—अविद्यादिक पंचक्लेशरूपमलसें रहित विशुद्धचित्तवाला आत्मसाक्षात्कारवान् पुरुष जिसजिस लोकका अपनेलिये वा

अन्य किसीलिये मनसें संकल्पकरेहै और जिन पदार्थों की कामना करेहै तिस तिस लोककूं और तिन पदार्थोंकूं सो प्राप्त होता है अर्थात् आत्मसाक्षात्कारवाला पुरुष सत्यसंकल्प होताहै तिससें विभूतिकी कामनावाला मनुष्य आत्मवेत्ताका पादप्रक्षालन शुश्रूषा नमस्कारादिकोंसें पूजन करे ॥

प्रश्न—आत्मदर्शीकी ऐसी सत्यसंकल्पतामें दृष्टांत कौन है ॥

सुनिये—१ श्रीविश्वामित्रजीके सत्यसंकल्पमात्रसें तत्क्षण हि त्रिशंकुराजा इन्द्रलोक को प्राप्त हुआ फिर सो देवराज इन्द्र सें गिराया भी विश्वामित्रजीके सत्यसंकल्पके बलसें भूमिपर नहीं गिरा किंतु अंतरिक्षमेंहि स्थित रहा पुनः विश्वामित्रजी स्वर्गादि नवीन सृष्टि रचने लगे तो इन्द्र आयके दीनहुआ फिर इन्द्र की प्रार्थना मानकर सृष्टि रचनेसें निवृत्त हुए यिहकथा बाल्मीकीय रामायणादिकों में प्रसिद्ध ही है ॥

२ श्रीवासिष्ठजी सत्यसंकल्पमात्रसें ध्रुवसेंभी उपरि केवल महाकाशमें पहुंचे वहां सत्यसंकल्पमात्रसें कुटि बनाकर तिस कुटि में बहुतकाल समाधिमें स्थितरहे यिह वृत्तान्त योगवासिष्ठके निर्वाण प्रकरणमें स्पष्टहै ॥

३ चूडाला महारानी अपनी राजधानीसें महावनमें अपनेपति महाराजा शिखिध्वजके पास केईवार पहुंची सत्यसंकल्पमात्रसें कुम्भमुनि मदनिका और इन्द्रादि शरीरोंको चतुरङ्गिणीसेनाकोरचा सो कुम्भमुनिसें लेकर परपुरुषके चरित्रपर्यंत चूडालाकी सर्व रचना महाराजा शिखिध्वजने एकमुहूर्त समाधिमें स्थितहोकर देखी यिहभी योगवासिष्ठके निर्वाण प्रकरणमें प्रकटहै ॥

४ सुलभादण्डिनीनें राजा जनकके ज्ञानकी परीक्षालिये सत्यसंकल्पसें जनकके हृदयमें प्रवेश करकें योगबलसें जनकको अभिभूत किया परंतु जनकराजा अभिभूतनहींहुआ किंतु वहां जनकके अन्तरहृदयमें ही योगीजनकका सुलभादण्डिनीसें संवादहुआ यहभी महाभारतके द्वादशपर्वमें प्रसिद्धहीहै

५ जिस वृक्षपर काकभुशुण्डका आलयथा वो वृक्षभी भुशुण्डजीके सत्यसंकल्पसें कल्प कल्पमें वैसाही होता भिया यिहभी वसिष्ठके निर्वाण प्रकरणमें स्पष्टहै देखो ॥

मत्संकल्पवशेनैव कल्पे कल्पे पुनः पुनः।
अस्मिन्नेव गिरेःशृङ्गे तरुरित्थं भवत्ययम् ॥
प्र० ६ सर्ग २१ ॥ २५

अर्थ—वसिष्ठजीको भुशुण्डजी कहतेभिये कि इसाहि गिरिके शृङ्गमें यिह वृक्ष मेरेसंकल्पके वशसें फिर फिर कल्प कल्पमें ऐसाही होताहै । इत्यादिक असंख्यात दृष्टांतहैं ॥ सत्य होवे व्यर्थ नहीं होवे तत्काल सिद्धहोवे संकल्पजिसका सो सत्यसंकल्प कहिये है और ऐसे व्यर्थ नहीं होनेवाले संकल्पकोभी सत्यसंकल्प कहितेहैं ॥

योगवासिष्ठके उपशम प्रकरणमेंभी आत्मदर्शीकी सर्व अर्थोंमें स्वतन्त्रता कही है देखो—

तदैववीतहव्योऽसौ शृणु किंनोपशान्तवान् ।
देहमुत्सृज्य तत्त्वज्ञो ज्ञातज्ञेयवतांवरः ॥
प्र० ५ सर्ग८९ ॥ ६२

येहि विज्ञातविज्ञेया वीतरागामहाधियः ॥
विच्छिन्नग्रन्थयः सर्वे ते स्वतन्त्रास्तनौस्थिताः ॥
प्र० ५ सर्ग ८९ ६३

दैवंवापिचकर्माणि प्राक्तनान्यैहिकानिच ॥
वासनावानतेषांत चेतो नियमयत्यलम् ॥ ६४ ॥
प्र० ५ सर्ग ८९ ६४

तेनतत्त्वविदांतात काकतालीयवन्मनः ॥
यद्यद्भावयति क्षिप्रं तत्तदाशुकरोत्यलम् ॥ ६५ ॥
प्र० ५ सर्ग ८९ ६५

यदातुतस्यप्रतिभा विदेहोन्मुक्ततांगता ॥
तदाविदेहमुक्तोभू दसौस्वतन्त्र्यसंस्थितिः ॥ ६७ ॥
प्र० ५ सर्ग ८९ ६७

विगतवासनमाशु विपाशता ।
मुपगतंमनआत्मतयोदितम् ॥
यदभिवाञ्छति तद्भवातक्षणात् ।
सकलशक्तिमयोहि महेश्वरः ॥ ६८ ॥

अर्थ—पहिले रामजी का प्रश्न है कि जब एकाग्रचित्तहुआ वीतहव्यमुनि आत्मसाक्षात्कारकूं प्राप्तहुआ तब हि देहकूं त्यागके विदेहमुक्तिकूं शीघ्र क्युं न प्राप्तहुआ ॥
रामजी के इस प्रश्न का उत्तर इन श्लोकोंद्वारा वसिष्टजी कहितेहैं ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ तत्ववेता वीतहव्य तवाहि देहकूंत्यागके विदेह मुक्त क्युं न हुआ सो हेराम सुनो ॥ ६२ ॥ जो ज्ञातज्ञेय वीतराग

महाबुद्धिमान् शरीरचित्तादिकोंमें आत्मभ्रांतिरूप ग्रन्थिसें रहित होतेहैं ऐसे सो सर्वमहात्मा शरीरमें स्वतंत्र स्थितहोवेहैं ६३ ॥ ईश्वर भी तिनके चित्तकूं नहिंप्रेरता और पूर्वलेकर्म वा इसजन्मकेकर्म वा पूर्वलेसंस्कारभी तिनके चित्तकूं नहिंप्रेरसक्के ६४ ॥ तिसहेतुसें हेतातरामजी तत्त्ववेत्तोंका मन जिसजिसअर्थकूं चिंतनकरेहै तिस तिसअर्थकूं काकतालीयवत् शीघ्रहि सिद्धकरेहै ६५ ॥ जब तिस वीतहव्यकी स्फूर्ति विदेहमुक्तिकूं गई तब यिहवीतहव्य विदेहमुक्त होताभया क्युंकि यिहवीतहव्य स्वतन्त्रतासें स्थितिवालाथा ६७ ॥ अविद्यादिकोंकी संस्काररूपवासनां जिसकी नष्टहुईहैं यातें शीघ्रहि अविद्यादिरूप पाशोंतें रहितहुआ आत्माकार मन अर्थात् आत्माके साक्षात्कारावाला मन जिसअर्थकी वाञ्छाकरेहै सो तिसी कालमें शीघ्रहोजावेहे क्युंकि महेश्वरपरमात्मा सर्वशक्तिमान्‌है अर उक्त-मन एकाग्रहुआ परमात्माके साक्षात्कारवालाहै ॥ ६८ ॥

॥ आत्मपुराणमेंभी स्पष्टकहाहै अध्याय १६, श्लो० २१६-२१८ ॥

शुद्धचेताः पुमानेष आत्मानमवलोकयेत् ॥
ईशवत्सकलं विश्वं कर्तुं हन्तुं प्रभुर्भवेत् ॥ २१६ ॥
शापानुग्रहयो रेवं समर्थोब्रह्मवित्सदा ॥
अस्यावनात्सुखंयान्ति मानवाः पुण्यकारिणः ॥
अवज्ञया तथादुःखं प्राप्नुवन्त्यपि पापिनः ॥ २१८ ॥

अर्थ—तमोरजोगुणरूपमलसें रहित शुद्धचित्तवालापुरुष आत्माकूं प्रत्यक्षकरेहै सो यिह आत्मवेत्तापुरुष ईश्वरकी न्यांई सकलविश्वके रचनेकूं नाशकूं समर्थहोवेहै २१६ ॥ 'एवं' विश्वकी

उत्पत्तिनाशवत् शापमें ,अनुग्रहमें, वरदेनेमेंभी ब्रह्मवेत्ता सदा समर्थ होताहै इसब्रह्मवेत्ताके ,सेवनसें, सेवाकरणेसें मनुष्य पुण्यकारीहुए सुखकूं प्राप्तहोतेहैं अर इसकी अवज्ञासें मनुष्य पापीहुए दुःखकूं प्राप्तहोवेहैं ॥

पूर्वपक्षी—शारीरकके चतुर्थाध्यायमें चतुर्थपादके १७वें सूत्रमें जगत्की उत्पत्तिस्थितिप्रलयरूप व्यापारसेंविना अणिमा महिमा लघिमाऽऽदिक ऐश्वर्य स्वतन्त्रहोता कहाहै तो विश्वकी उत्पत्ति स्थितिप्रलयकाभी सामर्थ्यमाने शारीरकसें विरोधहोगा

सिद्धान्ती—हेमित्रवर! इसआपके कथनसें अणिमाऽऽदिकाहि ऐश्वर्य होनाचाहिये और वास्तवसें तो वहां शारीरकसूत्रमें अपर ब्रह्मकी उपासनासें जगत्की उत्पत्तिप्रलयसें विना अणिमाऽऽदिक ऐश्वर्य स्वतन्त्रहोता कहाहै और यहां आत्मपुराणमें आत्मसाक्षात्कारवान् योगीन्द्रके सकलविश्वकी उत्पत्तिप्रलयकाभी सामर्थ्य कहाहै यातें कोई विरोधनहींहै

आत्मपुराणके नवमअध्यायमेंभी कहाहै श्लो० ७२२—

अप्रमत्तःपुमान्योगी जगदुत्पत्तिनाशने ॥
समर्थोभवति श्रीमानीश्वरोऽन्यथैवहि ॥

अर्थ—,योगी, परमात्मामें योगावस्थावान्पुरुष प्रमादरहित होताहै सोश्रीमान्योगी जगत्की उत्पत्ति अर प्रलयमें ईश्वरकीन्यांई समर्थहोताहै ॥ कर्तव्यसें निवृत्ति और अकर्तव्यमें प्रवृत्तिका नाम प्रमादहै ॥

पूर्वपक्षी--यदि उपनिषद् वासिष्ठ आत्मपुराणादिकप्रमाणोंसें आत्मदर्शी योगीश्वरके सत्यसंकल्पता अर ईश्वरतुल्य जगत्की उत्पत्तिप्रलयकीभी शक्ति मानेंगे तो यद्यपि ऐसा आत्मदर्शी किसीकल्पमें कोई हि होताहे तथापि वो अनेक हि ईश्वर कहने होंगे तिनके परस्परविरुद्धसंकल्पहोनेसें कोईकार्य सिद्ध नहिं होगा यदि कोईकार्य होगा तो ईश्वरताका अभाव सिद्धहोगा सोकैसे--

सुनिये कदाचित् एकईश्वरने संकल्पकिया कि इसदेवत्तके पुत्रउत्पन्नहो दूसरेईश्वरने संकल्पकिया कि इसदेवदत्तके कन्या उत्पन्नहो अथवा एक ईश्वरने संकल्पकिया कि--यिह यज्ञदत्त अबी मरे दूसरे ईश्वरने संकल्पकिया कि--यिहयज्ञदत्त अबी जीवितरहे तो ऐसेऐसे तिनके परस्परविरुद्धसंकल्प होनेसें कोईकार्य सिद्धनहोगा यदि होगा तो जिसका संकल्पसिद्ध नहुआ उसमें ईश्वरताका अभावसिद्धहोगा जिसका संकल्पसिद्ध हुआ फिरकबी उसकाभी संकल्पसिद्ध नहींहोगा इससें तिनसर्वमें ईश्वरताका अभाव सिद्धहोगा क्युंकि सत्यसंकल्प हि ईश्वरहोताहै जिसका अमोघसंकल्प नहिंहै वो ईश्वर नाहिं होता इससें जगत्की उत्पत्तिप्रलयरूपव्यापारसें विना अणिमादिकऐश्वर्य हि स्वतन्त्र होताहै ॥ अणिमा लघिमा महिमा प्राप्ति प्राकाम्य वशित्व ईशितृत्व कामावसायित्व इनअष्टविध विभूतिओंका नाम अणिमादिक ऐश्वर्यहै इनकाअर्थ पातञ्जलदर्शनके तृतीयपादके ४४ सूत्रकी योगचन्द्रिकाटीकामें विस्तारसें कहाहै तथापि संक्षेपसें यहांभी सुनिये

सूक्ष्महोनेकी शक्तिकूं अणिमा कहितहैं १ ॥ लघुहोनेकी, हलके

होनेकी शक्तिकूं लघिमा कहेहैं २॥ महान्होनेके सामर्थ्यकूं महिमा कहितेहैं ३॥ दूरस्थपदार्थोंकूं समीपकरणेकी शक्तिकूं प्राप्ति कहेहैं ४॥ इच्छाके अनभिघातकूं प्राकाम्य कहितेहैं अर्थयिह—भूतोंके कठिनादिस्वरूपोंसें इच्छाका अभिघात नहो ना प्राकाम्य कहियेहै ५॥ भूतभौतिकपदार्थोंमें ,स्वतन्त्रताकूं, स्वाधीनताकूं वशित्व कहितेहैं ६॥ भूतभौतिकपदार्थोंके उत्पादनमें अवस्थापनमें विनाशमें सामर्थ्यकूं ईशितृत्व कहेहैं ७॥ सत्यसंकल्पताकूं कामावसायित्व कहितेह ८॥

सिद्धान्ती—ईश्वर एकहिहै क्युंकि कालत्रयमें अविद्याराग द्वेषादिकोंसें रहित युक्तयोगीकूं ईश्वर कहितेहैं ऐसालक्षण एक ईश्वरमेंहि घटनेसें अनेकईश्वर नहीं कहेसकीते किन्तु ईश्वर एकहिकहियेहै और जोधर्ममेघसमाधिवाले केईक आत्मदर्शी ईश्वरवत् शक्तिमान् सत्यसंकल्प हुएहैं वो ,पहिले, भूतकालमें अविद्यारागद्वेषादिसहित हुएहैं पुनः साधनोंके क्रमसें धर्ममेघसमाधिकूं प्राप्तहोकर अविद्यारागद्वेषादिकोंसें रहितहुएहैं इससें कालत्रयमें अविद्यारागद्वेषादिकोंसें रहित नहोनेसे वो ईश्वरपदका अर्थ नहिं तथापि उक्त उपनिषदादिप्रमाणोंसें और विश्वामित्र वसिष्ठ चूडाला काकभुशुण्डआदि दृष्टांतोंसें तो सो आत्मदर्शी जीवन्मुक्तपुरुष ईश्वरवत् शक्तिमान् सत्यसंकल्प हि होतेहैं

ऐसे आत्मदर्शीपुरुषोंकूं ईश्वरतुल्यशक्तिमान् सत्यसंकल्प माननेसें जो आपने कहा कि—एकनेसंकल्पकिया कि—इसदेवदत्तके पुत्रहो दूसरेने संकल्पकियाकि इसदेवदत्तके कन्याहो अथवा एकने संकल्पकिया कि—यिह यज्ञदत्त अबी मरे दूसरेने संक

ल्पकिया कि यिह यज्ञदत्त अबी जीवितरहे ऐसे तिनके विरुद्धसंकल्पहोनेसें कोईकार्य सिद्ध नहींहोगा इससें अणिमादि कऐश्वर्यहि माननेयोग्यहै यिह आपका कथन तो अयुक्त हि है क्युंकि केवलअणिमादिक हि ऐश्वर्यमाने तोभी आपका कथित दोष तुमारेपक्षमें दूरहोसके नहिं क्युंकि अणिमादिक अष्टमें हि भूतभौतिकपदार्थोंके उत्पादन अवस्थापन विनाशका साम र्थ्यरूप ईशितृत्व सप्तम और सत्यसंकल्पतारूप कामावसा यित्व अष्टमऐश्वर्यहै ऐसे ईशितृत्व कामावसायित्वके स्वीकार किये तुमारे मतमें उक्तदोष दूरहोसके नहिं अर वास्तवमें तो आत्मदर्शीपुरुषमें ईश्वरतुल्य सामर्थ्यमाननेसें कोई दोषनहीं क्युंकि आत्मदर्शी पुरुष जैसे ईश्वरतुल्यशक्तिमान् सत्यसंकल्प होतेहैं तैसेहि ईश्वरतुल्य निरतिशय न्यायकारीभी होतेहैं क्युंकि अविद्यारागद्वेषादिक हि अन्यायके कारणहैं अविद्याराग द्वेषादिकोंविना परमपापरूप अन्याय होता नहिं अर जैसा ईश्वर अविद्यारागद्वेषादिकोंसें रहितहै तैसेहि वो महानुभाव आत्मदर्शीपुरुषभी अविद्यादिकोंसें रहितहोतेहैं इससें निरतिशय न्यायकारी हि होतेहैं तो यदि यज्ञदत्तके जीवनका हेतु प्रारब्ध शेषहै तो परमन्यायकारी आत्मदर्शीपुरुष यज्ञदत्तके मरणका संकल्प क्युं करेगा ॥ यदि देवदत्तके पुत्रका प्रारब्धहै तब निरतिशय न्यायकारी आत्मदर्शी कन्याकासंकल्प क्युं करेगा अर्थात् निरतिशयन्यायकारीहोनेसें आत्मदर्शीपुरुषोंके ऐसे विरु द्धसंकल्प होहिनहीं सक्के अर वरशापमेंभी आत्मदर्शिओंकी न्या यसेंहि प्रवृत्तिहोतीहै जैसे भृगुजीने शापसें नहुषकूं इन्द्रपदसें

गिराके अजगर बनादिया सो परमपूज्यमहार्षिओंका अपराधीथा इससें न्याय हि किया ॥ और आत्मदर्शनसें रहितयोगी कदाचित् कहीं विचारेविना वर शाप देवें तो उनके पुण्यका क्षय होताहै— भूतभविष्यद्वर्तमान सर्वयोगीन्द्रोंकाभी परमगुरु निरातिशयन्याय कारीं ईश्वरने यदिचन्द्रमा शीतल सूर्य उष्ण रचाहै तो सत्यसंकल्प ईशवत् शक्तिमान् हुएभी अतिमर्यादापुरुषोत्तम आप्तकाम आत्मदर्शीपुरुष परमगुरुपरमेश्वरसें ,अन्यथा, संकल्प चन्द्रमा उष्ण हो सूर्य शीतलहो ऐसा विरुद्धसंकल्प क्युं करेगा हेबाल! अल्प धर्मवेत्तोंकीन्यांई आत्मदर्शिओंकूं तुम क्या समानपुरुष जानतेहो एवं मतजानों ऐसेमतजानो क्युंकि सर्वधर्मोंके ज्ञाता सर्वसाधनों के पारग सत्यसंकल्पादिऐश्वर्यवान् महामर्यादापुरुषोत्तम आप्तकाम आत्मदर्शीहोतेहैं हेमित्र यदि अल्पधर्मोंके ज्ञाता अनाप्तकामपुरुषभी मनबाणीशरीरसें मातापितागुरुओंसें प्रतिकूल नहींवर्तते तो सर्वधर्मोंके ज्ञाता आप्तकाम आत्मदर्शीपुरुष परमगुरुपरमेश्वरसें विपरीतसंकल्प अन्यायसें क्युं करेंगे देखो पातंजलशास्त्रके प्रथमपादमें कहाहै सूत्र—

## पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

अर्थ—पिताका और उपदेष्टाका अर पूज्यका नाम गुरुहै पहिले जो सृष्टिके गुरु ब्रह्मादिक आत्मदर्शी हुएहैं सो कालसें अंतवालेहैं क्युंकि वोसृष्टिसें प्रथम नहिं होते तथा महाप्रलयहुएसें अनंतर भी नहिंरहते उन पहिले सर्वगुरुओंकाभी ईश्वर ,गुरुहै, जनकहै वेदोंद्वारा उपदेष्टाहै पूज्यहै सो ईश्वर जैसा इससृष्टिके आदिमें

निरतिशयऐश्वर्य्यवाला सिद्धहै तैसाहि पहिलीं अनंतसृष्टिऔंके आदिमेंभी निरतिशयऐश्वर्य्यवालाथा यातें कालकर अंतरहित होनेसें ईश्वर अनादिसिद्धहै और ब्रह्मादिक सर्वआत्मदर्शी योगीन्द्र अनादिसिद्ध नहिं इससें तिन सर्वआत्मदर्शीयोगीन्द्रोंका ईश्वर गुरुहै, जनकहैं उपदेष्टाहै पूज्यहै इति—

हे पाठक ! देखो उक्तउपनिषद् वासिष्ठ आत्मपुराणादिप्रमाण ईश्वरकी न्याईं आत्मसाक्षात्कारवालेपुरुषकी सत्यसंकल्पता सर्वअर्थोंमें स्वतन्त्रताऽऽदिक कैसे स्पष्टपदोंसें प्रतिपादनकर्तेहैं भावयिह—जिसप्रमाणमें स्पष्टअर्थवालेपद नहिंहोवें किंतु खैंचाखैंचीसें वा उपरिसें पदमिला अर्थकर्के प्रमाणदेवें सो वो प्रमाण समीचीन नहींहोता किंतु स्पष्टार्थवाले प्रमाण बुद्धिमानोंको देनेयोग्यहैं माननेयोग्यहै इससें सोई समीचीनप्रमाणहै ॥

पूर्वपक्षी—अन्यसर्वअर्थोंमें आत्मदर्शीकी स्वतंत्रता सत्यसंकल्पता हुएभी प्रारब्धरूप प्रतिबंधकके होते विदेहमुक्तिमें स्वतन्त्रता संभवे नाहिं ॥

सिद्धान्ती—इसअर्थका विचार द्वितीयप्रकाशकीसमाप्तिमें होगा

प्रश्न—सत्यसंकल्पता सर्वअर्थोंमें स्वतन्त्रतारूप ऐश्वर्य योगद्वाराहि प्राप्तहोताहै सो श्रीवसिष्ठ विश्वामित्र चूडाला जनकादिकभी योगीहि हुएहैं इससें तिनवसिष्ठादिकोंमें सो ऐश्वर्य हुआहै परन्तु अयोगीविद्वानोंमें वो ऐश्वर्य संभवे नाहिं ॥

उत्तर—श्रवणमननसें जो परोक्षज्ञानहोताहै ऐसेपरोक्षज्ञानवानोंमें यद्यपि वो ऐश्वर्यसंभवे नाहिं तथापि आत्मसाक्षात्कारवाले

पुरुषोंमें संभवेहै क्युंकि आत्मसाक्षात्कारवालेपुरुष तो योगी हि होतेहैं ॥

हे प्रियपाठक--पूर्वले भगवत् सनत्कुमार वसिष्ट कपिल अत्रि भृगु शुक्र कश्यप अगस्त्य पराशर याज्ञवल्क्य सुलभा चूडाला मदालसा शिखिध्वज जनक शुकादिक आत्मविद्याके सर्वआचार्य योगयुक्तहि श्रवणमें आतेहैं, और इससमयमें प्राय: मेरेभ्राता योगनामके श्रवणसेंहि क्षोभकर्तेहैं सो उनकी अति भ्रांतिहैं बडीभूलहै क्युंकि समाधिसेंहि सर्वांतरआत्माका प्रत्यक्ष होताहै योगविना आत्मसाक्षात्कार नहिंहोसक्ता युक्तिप्रमाणों सें सिद्ध यिहअर्थ विस्तारसें दिखाया जावेगा ॥ १ ॥

अब हेतुकूं दिखलातेहुए ग्रन्थके रचनकी प्रतिज्ञाकरैंहैं-

**मुमुक्षुभिरभीष्टत्वाद् । दर्शनस्येदृशोभृशम् ॥**
**आत्मेक्षणप्रमाणार्कं । रचयेयुक्तिमानतः ॥ २ ॥**

टीका—पूर्णानन्दरूपसें स्थिति सर्वअनर्थौंकीनिवृत्ति, सर्व अर्थोंमें स्वतन्त्रता, ऐसेसर्वोत्तम फलत्रयवाले आत्मदर्शनकी मुमुक्षुजनोंको अतिवाञ्छाहोनेसें आत्मदर्शनरूपप्रत्यक्षप्रमाके करणके निश्चयलिये आत्मेक्षणप्रमाणार्कग्रंथकूं मैं युक्तिप्रमाणोंसें रचताहूं आत्माका ईक्षण, दर्शनरूपप्रमाके करणरूपप्रमाणका सूर्यकी न्यांई अभिव्यंजकहोनेसें इसग्रंथकानाम आत्मेक्षणप्रमाणार्कहै ॥ व्यापारसें भिन्न जो व्यवधानरहित साक्षात्साधनहो सो करण कहीताहै अबाधितअर्थकूं विषयकरणवाला जो स्मृतिसेंभिन्नज्ञान

सो प्रमाकहियेहै ॥ ऐसी प्रमाके करणकूं प्रमाण कहितेहैं विदितरहेकि=दर्शन ,साक्षात्कार, ईक्षण, प्रत्यक्षज्ञान, अवलोकन, यिहसर्वशब्द अपरोक्षज्ञानके वाचकहैं ॥ २ ॥

सर्वोत्तमफलत्रयवाली आत्मसाक्षात्काररूप प्रमाका सो करणरूप प्रमाण कौनहै इसप्रश्नका उत्तर अब कहितेहैं ॥

सिद्धंबलिष्ठोपनिषत्प्रमाणै ।
वेदान्तसूत्रस्मृतिभाष्यवाक्यैः ॥
आत्मेक्षणात्मप्रमितेःसमाधि ।
रेवास्तिसाधोकरणंनचान्यत् ॥ ३ ॥

टीका—अत्यन्तबलवाले उपनिषद्रूपप्रमाणोंसें और वेदान्तसूत्र गीता मनुस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति दक्षस्मृतिके महाभारत आत्मपुराण न्यायसूत्र विवेकचूडामणिके शारीरकभाष्यके वाक्यरूपप्रमाणोंसें आत्मसाक्षात्काररूपप्रमाका समाधिहि करण सिद्धहै हे साधो ! समाधिसें अन्यकोई करण सिद्धनहिंहै ॥

प्रश्न—वो उपनिषदादिरूप प्रबलप्रमाण कौनहैं—सुनिये परंतु पहिले यिहभी जाननाचाहिये कि प्रमाणकौनहैं और प्रबलप्रमाणकौनहै क्युंकि प्रबलप्रमाणोंसेंहि प्राज्ञपुरुषोंको निश्चयहोताहै संशयनिवृत्तहोवेहै ॥

भ्रमविप्रलिप्सादोषोंसे रहित यथार्थवक्ताका वाक्यप्रमाणहै और भ्रमविप्रलिप्सादोषोंसें रहित युंजानयोगी सर्वज्ञमहर्षिओंके वाक्य प्रबलप्रमाणहैं ॥ जो भ्रमविप्रलिप्सादोषोंसें सर्वदा

रहिताहि होवेहै ऐसे परमयोगीन्द्र अनादिसर्वज्ञ युक्तयोगी परमेश्वरतें प्रकटहोनेसें वेदवाक्य अतिप्रबलप्रमाणहैं इससें सर्व पुरुषोंसें वेदवाक्य अलंघनीयहैं ॥

और यिहभी विदितरहै कि—स्वरूपोपनिषद्आदि केईकउपनिषदां वेदोंमें नहिंहैं यातें प्रसिद्ध हिंहै कि—सो विद्वानोनें रचके चलादीहैं यहां विचारिये कि—वेदके भागविशेषका नाम उपनिषद् है जिनविद्वानोंनें सोग्रन्थ आपरचकर ,उपनिषद्नामसें, वेदके भागविशेषके नामसें चलादीहैं यातें तिनविद्वानोंमें विप्रलिप्सा दोष प्रकटाहिहै सो ,भ्रमविना, अविद्याविना विप्रलिप्सादोष होता नहिं इससें तिनमें भ्रमविप्रलिप्सादोष प्रसिद्धहिहैं याहेतुतें भ्रम विप्रलिप्सादोषवाले मनुष्यकृतहोनेसें स्वरूपोपनिषदादिग्रंथ प्रमाणरूप माननेयोग्य नहिं इसीप्रकार अन्यविद्वानोंनेंभी जोजो ग्रंथ आप रचकर अन्यमहात्माओंके नामसें प्रचलितकियेहैं सोसो ग्रंथभी प्रमाणरूप माननेयोग्यनहिं ॥

साधनककें जो योगावस्थाकूं प्राप्तहुएहैं अर योगावस्थामेंहि जिनको सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टपदार्थोंका प्रत्यक्षहोवेहै ताकूं युंजान योगी कहितेहैं और जो साधनोंसें विनाहि सदायोगावस्थावान्है सो युक्तयोगी कहिताहै ऐसा युक्तयोगी एक ईश्वरहिहै ॥ और वसिष्ठ याज्ञवल्क्य आत्रि भृगु पराशरादिक सर्वयोगी युंजानयोगी हैं ॥

पूर्वपक्षी—तत्साक्षात्प्रमितेः समाधिकरणे श्रुत्यादि मानानिभोः श्राव्यन्तां यदिसन्तिसन्तियादिनो

तात्किंवृथाजल्पसि ॥ सिद्धान्ती—मानानीहबहूनि सन्तिसुमते चेन्नश्रुतानित्वया श्रूयन्तांप्रबलानितानि गदतो मत्तोधुनाभोःसखे ॥ ४ ॥

टीका—पूर्वपक्षी—हे मित्र ! आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाके समाधिरूप करणमें यदि श्रुतिस्मृतिआदि प्रमाणहैं तो सुनाइये यदि नहिंहैं तो व्यर्थ क्युं कहितेहो—सिद्धान्ती—हे सुमते ! इसमें बहुत प्रबलप्रमाणहैं यदि तुमने नहिं सुनें तो तिन प्रबलप्रमाणोंकूं अभिव्यक्त कथनकर्तेहुए मुझसें अब सुनो हेसखे ॥

प्रबलप्रमाणरूप अथर्ववेदकी कैवल्यउपनिषदकूं देखो ॥

तस्मै सहोवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि ॥ खण्ड १ ॥ २ ॥

अर्थ—पहिलेमन्त्रमें आश्वलायनने ब्रह्माकूं कहा कि—हे भगवन् ! ब्रह्मविद्याकूं उच्चारणकरो तिसप्रति सोब्रह्मा कहिते भये कि श्रद्धाभक्तिसें ध्यानद्वारा योगसें ब्रह्मसाक्षात्काररूप ब्रह्मविद्या प्राप्तहोतीहै ॥

प्रबलप्रमाणरूप अथर्ववेदकी मुण्डकउपनिषदमेंभी कहाहै—

नचक्षुषागृह्यतेनापिवाचा ।
नान्यैर्देवैस्तपसाकर्मणावा ।
ज्ञानप्रसादेनविशुद्धसत्व

स्ततस्तुतं पश्यतेनिष्कलंध्यायमनः ॥

॥ मुं० ३ ॥ खण्ड १ ॥ ८ ॥

अर्थ—पहिले मंत्रमें प्रतिपादनकरा सो सूक्ष्मतमआत्मा चक्षुःइन्द्रियसें प्रत्यक्ष नाहिं होता और वाक्यरूप शब्दसेंभी प्रत्यक्ष नाहिं होता अर अन्य इन्द्रियेंसेंभी प्रत्यक्ष नाहिंहोता और चान्द्रायणादिरूप तपसें वा अग्निहोत्रादिरूपकर्मसें प्रत्यक्ष नाहिंहोता यद्यपि उक्ततपसें कर्मोंसें चित्तशुद्धिहोवेहै तथापि केवल तपकर्मोंसें हि आत्माप्रत्यक्ष नाहिंहोता किंतु ज्ञानरूप सत्व गुणकी ,निर्मलतासे, तमोरजोगुणकी निवृत्तिसें विशुद्धअंतः करणवालापुरुष आत्मसाक्षात्कारके योग्यहोवेहै ततः कहिये तिस आत्मसाक्षात्कारकी योग्यतासें अनंतर ,ध्यायमानः ,ध्यान कर्तापुरुष तिसनिरवयव आत्माकूं साक्षात् करेहै ॥

हे भ्रातृगण ! देखो—यिह श्रुतिभगवती पूर्वार्धमें शब्दसें आत्मसाक्षात्कारका निषधकरके उत्तरार्द्धमें विशुद्धचित्तवाले योग्यपुरुषको ध्यानसेंहि आत्मसाक्षात्कार कथन करेहै ॥ पूर्वार्द्धमें शब्दसें निषधकर्कें उत्तरार्द्धमें लक्षणावृत्तिसें आत्मसा क्षात्कार नाहिं कहिती और न मननरूपसांख्यसें आत्मसाक्षा त्कार कहेहै किंतु ध्यानसें हि कहितीहै ॥

प्रवलप्रमाण यजुर्वेदकी बृहदारण्यके उपनिषदमेंभी कहाहै—

शान्तोदान्तउपरतस्तितिक्षुः समाहितोभूत्वाऽऽत्म न्येवात्मानं पश्यति ॥

॥ अ० ॥ ४ ॥ ब्राह्मण ॥ ४ ॥ २३ ॥

अर्थ—बाह्यइंद्रियोंके व्यापारसें शांत ,दांत, शब्दस्पर्शादि विषयोंकी तृष्णासें रहित अर लोकवासनासें पुत्रवासनासें वित्त वासनासें निवृत्तहुआ ,तितिक्षु, शीतउष्णतादिक द्वंद्वोंका सहन शीलपुरुष आत्मामें ,समाहित, समाधिमें स्थितहोकराहि आत्माकूं प्रत्यक्षकरेहै ॥

और यिहभी विदितरहैकि समाधिअवस्थावालेकूं समाहित कहितेहैं॥ व्युत्थानअवस्थावालेकूं व्युत्थितकहेहैं समाधिसें भिन्न अवस्थाकूं व्युत्थानअवस्थाकाहितेहैं ॥

प्रबलप्रमाणरूप यजुर्वेदकी कठउपनिषद्कूंभी देखो॥

तंदुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गव्हरेष्ठं पुराणम् ॥
अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं मत्त्वाधीरो हर्षशोकौ
जहाति ॥
॥ अ० १ वल्ली २ ॥ ३२ ॥

इसमंत्रपर शांकरभाष्य और गोपालेंद्रयतिकी टीकाभीदेखिये ॥

भाष्य—विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्यचेतस आत्मनि समाधानमध्यात्मयोग स्तस्याधिगम स्तेनमत्त्वादेवमात्मानं धीरोधीमान् हर्षशोकावात्मन उत्कर्षापकर्षयोरभावाज्जहाति ॥

भाष्यकीटीका—अत्रधीरो बुद्धिमानिति श्रवणमननसत्वमु

च्यते अध्यात्मयोगशब्देन निदिध्यासनमुच्यते मत्वेतिसाक्षात्कारउच्यते ॥

अर्थ—यमराज कहितेहैं कि हेनाचिकेतः देहसेंभिन्न जो आत्मा तुमने पूछा है सो आत्मा दुर्दर्शहै क्युंकि शब्द स्पर्शरूपरसादिक विषयाकार वृत्तिओंसें प्रच्छन्नहै अर जीवों की बुद्धिरूपगुहामें स्थितहै कार्यकारणसंघातरूप बनमें स्थितहै दुःखसें, साधनोंके अतिकष्टसें साक्षात्कारहोवे जिसका सोदुर्दर्श कहियेहै तिसदुर्दर्श सनातन आत्मदेवकूं बुद्धिमान् विवेकी पुरुष अध्यात्मयोगकी प्राप्तिसें, विषयोंतें हटाके चित्तको आत्मामें समाधिकी प्राप्तिसें साक्षात्करकें हर्षशोककूं त्यागेहै अर्थयिह—प्रियअप्रियपदार्थोंकी प्राप्तिसें आत्माकी अधिकता न्यूनता नाहिंहोनेतें हर्षशोकसेंरहितहोवेहै ॥

भाष्यकीटीकाकाअर्थ—बुद्धिमान् कहिनेसें श्रवणमननवत्ता कही अध्यात्मयोगशब्दसें निदिध्यासन कथनाकिया मत्वापदसें साक्षात्कारकिहा ॥

हे भ्रातः! देखो यहांभी श्रवणमननरूप सांख्यसें अनंतर योगसें हि आत्मसाक्षात्कार कहाहै ॥

कठउपनिषद्के प्रथमाध्यायकी तृतीयावल्लीमेंभी कहाहै ॥

**एषसर्वेषुभूतेषु गूढोत्मानप्रकशाते॥ दृश्यतेत्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥**

अर्थ—पहिले दोमन्त्रोंसें प्रतिपादनकरा जो सूक्ष्मतम सर्वा

न्तर पुरुष सो *यिह (पुरुष, आत्मा ब्रह्मादितृणपर्यन्त सर्वभूतोंमें (गुप्तहै, अविद्यासें आवृतहै इसीहेतुसें नप्रकाशते, सर्वजीवोंको प्रत्यक्षनहिंहै किंतु सूक्ष्मदर्शीविद्वानोंने सूक्ष्मवस्तु को विषयकरणेवाली एकाग्रबुधिसें प्रत्यक्ष करियेहै अर्थात् सूक्ष्म अर (एकाग्र, ध्यानावस्थितचित्तसें सूक्ष्मतमआत्मा सूक्ष्म दर्शीविद्वानोंने साक्षात् करियेहै ॥

प्रबलप्रमाणरूप कठउपनिषद्के द्वितीयाध्यायमें अतिस्पष्टतासें कहाहै

यदापञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसासह। बुद्धिश्चन विचेष्टेत तामाहुःपरमांगतिम् ॥ वल्ली ६ ॥ १० ॥

तांयोगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥ अप्रमत्तस्तदाभवति योगोहिप्रभवाप्ययौ ॥ ११ ॥

अर्थ—जब मनकेसहित पंचज्ञानइन्द्रिय (स्थितहोतेहैं अपने अपने विषयोंमें व्यापाररहितहोतेहैं अर बुद्धिभी चेष्टानाहिंकरे अर्थात् आत्मामें स्थितहुआ चित्तभी चेष्टा नाहिं कर्ता तिस अवस्थाकूं परमगतिकहितेहैं मोक्षरूपपरमगतिका साधनहोनेसें सोअवस्था परमगति कहियेहै ॥ १० ॥ वाह्य और अंतर इन्द्रियोंकी ऐसी निश्चलस्थितिकूं हि योगमानतेहैं तब योगावस्थामें पुरुष प्रमादरहितहोताहै सृष्टिप्रलयकासामर्थ्यरूप ऐश्वर्यका हेतुभी योगहिहै ॥

देखो हे भ्राता ! यिह श्रुतिभगवती योगकूं परमगतिका

* प्रकृत

हेतु कहेहै अर योगावस्थामें प्राप्तयोगीकूं हि ,अप्रमत्तः, अप्रमादी कहेहै तो आप ,आत्मज्ञानसें योगका कुछसंबन्ध नहिं ऐसा प्रबलप्रमाणोंसें विरुद्धकथनकर्ते कैसे शोभापासक्तेहैं ॥

प्रबलप्रमाणरूप वेदांतशास्त्र शारीरकमें भी अब दृष्टिदीजिये ॥

## सूत्र—अपिसंराधने प्रत्यक्षानुमानभ्याम् ॥

अ० ३ ॥ पा० २ ॥ २४

इससूत्रपर श्रीशंकराचार्योंकृतभाष्य—अपिचैन मात्मानं निरस्तसमस्तप्रपञ्च मव्यक्तं संराधनकाले पश्यन्ति योगिनः संराधनंच भक्तिध्यानप्रणिधानाद्यनुष्ठानम् कथं पुनरवगम्यते संराधनकाले पश्यन्तीति प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रुतिस्मृतिभ्यामित्यर्थः तथाहि श्रुतिः पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयम्भू स्तस्मात्पराङ् पश्याति नान्तरात्मन् ॥ कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष दावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् इति ॥ ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तुतं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः इतिचैवमाद्या ॥ स्मृतिरपि यं विनिद्राजित. श्वासाः संतुष्टाःसंयतेन्द्रियाः ॥ ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मनेनमः ॥ योगिनस्तंप्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् इति चैवमाद्या ॥

अर्थ—सूत्रके अपिशब्दका चअर्थ यहां भाष्यकार लिखते हैं पूर्वले तदव्यक्तमाहाहि, इस २३वें सूत्रमें ब्रह्मकूं 'अव्यक्त' अतींद्रिय कहा है इससें सदा जाग्रदादि अवस्था में प्रत्यक्ष नहिं होता अपि कहिये 'च' पुनः संराधनकालमें समस्त प्रपंचसें रहित अव्यक्त प्रकृत आत्माकूं योगीजन साक्षात्करते

हैं भक्तिध्यानप्रणिधानादिकोंका अनुष्ठान संराधनपदका अर्थ है अर्थयिह—'भक्तिसहित' श्रद्धासहित ध्यानलगाकर अपने चित्तमें सूक्ष्मतम आत्मा का *अतिस्थापन करणा प्रणिधान पद का अर्थ है अर भक्तिसहित ध्यानावस्था में एकाक्षर मन्त्र का मानसजप नमस्कार आदिपदका अर्थ जानना ऐसे संराधन कालमें अर्थात् श्रद्धासहित ध्यानावस्थामें प्रणिधानादिकालमें योगीजन आत्माकूं साक्षात्करते हैं ॥

प्रश्न—संराधनकालमें योगीजन प्रत्यक्षकरते हैं यिह आपने किससे जानिये है ॥

उत्तर—श्रुतिस्मृतियोंसें जानिये है ॥ तैसेहि श्रुतिकहेहै पराञ्चिखानि यहांसे निष्कलंध्यायमानः यहांतक श्रुतियोंका पाठहै तिनकाअर्थ श्रोतत्वक्नेत्रादि इन्द्रिय शब्दस्पर्शरूपादि वाह्यपदार्थों कूं विषयकरणवाले स्वयम्भु परमात्माने रचेहैं इस से इन्द्रियोंको वहिर्मुख होनेसे वाह्य शब्दस्पर्शरूपरसादिकोंकूं इन्द्रियोंद्वारा जीव प्रत्यक्षकरेहै अंतरात्माकूं इन्द्रियोंद्वारा नहीं प्रत्यक्ष करसक्ता सर्वअनात्मपदार्थोंसे 'आवृत्त हैं' निवृत्त हैं अर्थात् निरुद्धहैं चक्षुः श्रोत्रमनआदि सर्वइन्द्रिय जिसके सो आवृत्तचक्षुःपदका अर्थहै क्युंकि यहां चक्षुःशब्द सर्व इन्द्रियोंका उपलक्षणहै अर मनभी इन्द्रिय हि है यिह भगवद्गीतामेंभी कहाहै कि 'इन्द्रियाणांमनश्चास्मि' इन्द्रियों में मन मैंहुं अर्थात् प्रधानइन्द्रिय मनहै क्युंकि मनकी गतिके अधीन

*समाधि

हि श्रोत्रादिइन्द्रियोंकी गतिहै इसीहेतुसें मन अन्यत्रहोवे तो श्रोत्रादिइन्द्रियोंसे कथाश्रवणादिक नहिं होसक्ते इससें जैसे मन की चंचलताविना अन्यइन्द्रियोंमें चंचलता होवे नहिं तैसे मनके निरोधहुए विना अन्यइन्द्रियोंका निरोधभी नहिंहोता इससें मन श्रोतचक्षुआदिक सर्वइन्द्रियोंकूं जिसने रोका हुआहे अर्थात् परमात्मामें मनकी एकाग्रतासें जिसके इन्द्रिय निरुद्धहैं सो पुरुष यहां आवृत्तचक्षुः पदका अर्थहै ऐसा 'कोईक' दुर्लभ आवृत्तचक्षुः धीरपुरुष मोक्षकूं चाहिताहुआ अंतरात्माकूं साक्षात्करेहै इति ॥

सत्त्वगुणकी निर्मलतासे विशुद्धअंतःकरणवाला पुरुष आत्मसाक्षात्कारके योग्यहोवेहै ततस्कहिये तिस आत्मसाक्षात्कारकी योग्यतासे अनंतर 'ध्यायमानः' ध्यानकर्तापुरुष तिसनिरवयव आत्माकूं साक्षात्करेहै इत्यादिक श्रुतिहैं स्मृतिभी कहेहै निद्रा जीत्तीहै जिनोंने और जीतीहै प्राणवायु जिनोंने ऐसेसो संतोषी निरुद्धइन्द्रियोंवाले 'युंजाना' योगकर्ते योगीजन जिसज्योतिःस्वरूप आत्माकूं साक्षात्करेहैं तिस योगात्माप्रति नमस्कारहे ॥ योगसे प्रत्यक्षहोनेयोग्य जो आत्मा सो योगात्मा कहियेहै योगीजन तिससनातन भगवत्कूं प्रत्यक्षकरेहैं इत्यादि स्मृतिहैं ॥

देखो देखो हेविद्वज्जना शारीरकके इसस्थलमें येहि प्रसंग* है कि यदि परब्रह्महे तो सर्वजीवोंको प्रत्यक्ष क्युं नहिंहोता याका उत्तर 'तदव्यक्तमाहाहि' इस २३वें सूत्रसें कहा कि तिस परब्रह्मकूं 'अव्यक्त' अतींद्रिय श्रुतिकहितीहै अर्थात् अतींद्रियहै इससे सर्व

---

*प्रकरण

जीवोंको जाग्रदादिअवस्थामें प्रत्यक्ष नहिंहोता पुनः २४वें सूत्रसैं 'संराधनकालमें योगीजन प्रत्यक्ष करेहैं' ऐसे कहैकर भाष्यकारों नें स्पष्ट श्रुतिस्मृतिप्रमाणोंसे 'योगावस्थामें योगीजनोंको ब्रह्म साक्षात्कार होवेहै, यिह सिद्धकिया अर आत्माका 'योगात्मा' विशेषण कहाहै उसका अर्थभी भाष्यकी टीकामें ये हि लिखादेख लीजिये कि योगसें 'लभनीय' प्रत्यक्ष होनेयोग्य जो आत्मा सो योगात्मा कहियेहै हेभ्रातः यदि निदिध्यासनकी परिपक्वावस्था रूप समाधि विना श्रवणमननरूप सांख्यसैंभी ब्रह्मसाक्षात्कार होसक्ता तो यहां भाष्यकारक्युं न लिखते किंतु अवश्यं लिखते क्युंकि इसस्थलमें ब्रह्मसाक्षात्कारका 'विशेषप्रसंगथा' खास जिकरथा ॥

अब इसशारीरकसूत्रके भाष्यकी आनन्दगिरिटीकामैंभी देखो क्या लिखाहै–

**नास्य सदाग्राह्यत्व मग्राह्यत्वं वा समाध्यवस्थायां प्रत्यक्त्वेन भानात् ॥**

अर्थ—प्रकृत अतींद्रिय आत्माके सदा ग्रहणकी योग्यता वा सदा अग्रहणकी योग्यता नहिंहै काहेते सो समाधि अवस्था में अंतरात्मरूपसें भान होनेते अर्थात् अतींद्रिय होनेते आत्मा 'सदा' सर्वअवस्थामें प्रत्यक्षहोनेयोग्य नहिंहै अर समाधिअवस्था में अंतरात्मरूपसें भानहोनेते आत्मा 'सदा' सर्वअवस्थामें नप्रत्यक्ष होनेयोग्यभी नहिंहै ॥ हेमित्र देखो यहां स्पष्टपदोंसें अन्यसर्व अवस्थाओंमें आत्मसाक्षात्कारका निषेधकर्के समाधिअवस्थामें हि आत्मसाक्षात्कारका प्रतिपादनाकियाहै ॥

महर्षिगोत्तम रचित न्यायशास्त्रमैंभी ऐसेहिकहाहै−

समाधिविशेषाभ्यासात् ॥

अ० ४ ॥ आन्हिक २ ॥ सूत्र ३८ ॥

अर्थ—समाधिविशेषके अभ्याससें आतमतत्त्वका साक्षात्कार होताहै हेमित्र देखो महर्षिगौंतमजीभी स्पष्टपदसे कहितेहैं ॥

श्री भगवद्गीताके ध्यानादिमैं कथनकिये मंगलश्लोककूंभी देखिये :−

यंब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्तिदिव्यैःस्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदै र्गायन्तियंसामगाः । ध्याना-वस्थिततद्गतेनमनसा पश्यन्तियंयोगिनो यस्यान्तं-नविदुःसुरासुरगणा देवायतस्मैनमः ॥

अथ—ब्रह्मा वरुण इंद्र रुद्र मरुत् देवताभी मनोहर स्तोत्रोंसैं जिसदेवकी स्तुतिकर्तेहैं अर सामवेदकूं गायनकरणेवाले महर्षि जन व्याकरणादिषट्अंगोंसहित अर पदोंकेक्रम और उपनिषदों सहित वेदोंसे जिसदेवकूं गातेहैं अर तिसदेवमें लगेहुए ध्यानमें स्थितमनसें अर्थात् आत्माके ध्यानमेंस्थित मनसें योगीजन जिस देवकूं साक्षात्करेहैं अर अनंतहोनेते जिसदेवके अंतकूं सुरअसुरों केगण नाहिं जानसक्ते तिसदेवप्रति नमस्कार है ॥

भगवद्गीतामें श्रीकृष्णचन्द्रके प्रबलप्रमाणरूप वाक्यमैंभी अब दृष्टि दीजिये ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि ।
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः ॥

अ० ६ ॥ २९ ॥

अर्थ—योगसे 'युक्तहै' समाहितहै अंतःकरण जिसका सो योगयुक्तात्मा कहियेहै अर जाका कदाचिद्भी परिणाम नहिंहोवे अर्थात् सर्वदा 'समरहे' समानरहे ऐसा परमात्मा यहां समशब्द काअर्थहै ऐसे समपरमात्माका 'दर्शन' साक्षात्कारहोवे जिसको सो समदर्शनः कहियेहै तिसीकूं समदर्शीभी कहितेहैं ऐसाजो सर्व में 'समदर्शी' परमात्मदर्शी योगयुक्तात्मा पुरुषहै सोयोगी ब्रह्मादि पिपीलिकादिक सर्वभूतोंमें स्थित व्यापक आत्माकूं अर आत्मामें सर्वभूतोंकूं साक्षात्करेहै ॥

शंका—'योगयुक्तात्मापुरुष सर्वभूतोंमें आत्माकूं आत्मामें सर्वभूतोंकूं प्रत्यक्षकरेहै' ऐसेहि कहना चाहियेथा क्युंकि समाधि अवस्थामें सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंका योगीको प्रत्यक्ष होवेहिहै तो 'सर्वत्रसमदर्शनः' यिह क्युं कहा ॥

समाधान—सर्वयोगियोंको सर्वसूक्ष्मादिपदार्थोंका साक्षात्कार नहिंहोता किंतु परमात्माके साक्षात्पर्यन्त जिसनें सूक्ष्मतमसमाधि का अभ्यासकियाहै तिसयोगीन्द्रको हि सर्वसूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंका साक्षात्कार होताहै परमात्माके साक्षात्कारपर्यन्त जिस नें सूक्ष्मतमसमाधिका अभ्यास नहिंकिया ऐसा जो ध्रुवचन्द्र नाभिचक्रादिकोंमें 'योगयुक्तात्माहै' समाहितचित्तवालाहै सो सर्व भूतोंमें आत्माकूं आत्मामें सर्वभूतोंकूं प्रत्यक्ष नहिंकरसक्ता तिस योगीमें अतिव्याप्तिके निवारण लिये 'सर्वत्रसमदर्शनः' यिह कहा है ॥

शंका—सर्वत्रसमदर्शनःपुरुष सर्वभूतोंमें आत्माकूं आत्मा

में सर्वभूतोंकूं साक्षात्करेहे ऐसेहि कहिते तो योगयुक्तात्मा यिह विशेषण क्युं कहा ॥

समाधान—सूक्ष्मतमसमाधिके जयसें सर्वत्र परमात्माका साक्षात् जिसको हुआहै ऐसाजो सर्वत्र समदर्शनः पुरुषहै सोभी समाधि अवस्थामें हि सर्वभूतोंमें आत्माकूं आत्मामें ब्रह्मादिसर्व भूतोंकूं साक्षात्करेहे तिस योगीन्द्रकोभी व्युत्थानावस्थामें सर्वभूतों में आत्माका आत्मामें सर्वभूतोंका प्रत्यक्ष नहिंहोता इससें योग युक्तात्मा यिहविशेषण कहाहै क्युंकि युंजानयोगियोंको समाधि अवस्थामेंहि सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंका प्रत्यक्षहोताहै पुनः व्युत्थानावस्थामें तिनपदार्थोंका स्मरणहोवेहै इससें परमात्मा के साक्षात्कारपर्यन्त जिसनें सूक्ष्मतम समाधिका अभ्यासकियाहै ऐसा जो सर्वत्र समदर्शनः पुरुष सो 'योगयुक्तात्मा हुआ' समाहित चित्तवालाहुआ पुरुष सर्वभूतोंमें आत्माकूं आत्मामें ब्रह्मादि सर्व भूतोंकूं साक्षात्करेहै इति ॥

अष्टमाध्यायका चौदवांश्लोक, पंचदशाध्यायका ग्यारवां श्लोक, अष्टदशाध्यायका ५२ श्लोक इत्यादिक भगवद्गीताके अनेक श्लोक प्रमाणहैं सो विस्तारभयसें नहिंलिखे यदि जिज्ञासा हो तो भगवद्गीतामें देखलेने ॥

प्रबलप्रमाणरूप याज्ञवल्क्यस्मृतिकूंभी देखो ॥

इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्यायकर्मणाम् ।
अयंतुपरमोधर्मो मद्योगेनात्मदर्शनम् ॥

अ० १॥८॥

अर्थ—यज्ञ स्नानादिआचार इन्द्रियोंका निरोधरूप दम अहिंसा दान वेदाध्ययन इत्यादिक कर्मोंमें यिह परमधर्महै जोयोगसें आत्माकासाक्षात्कारहोवेहै ॥

हेप्रियजन ! देखो—ये महर्षियोंके वाक्यरूप प्रबलप्रमाण कैसे स्पष्टपदोंद्वारा योगसेंहि आत्मसाक्षात्कार कहितेहैं ऐसे प्रबलप्रमाणोंकूं देखकरभी यदि आप हठकूं नहिंछोडें तो मानों भ्रमकी महिमा दिखलातेहैं ॥

मनुस्मृतिमेंभी कहाहै ॥

प्रियेषुस्वेषुसुकृत मप्रियेषुचदुष्कृतम् ।
विसृज्यध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येतिसनातनम् ॥

अ० ६ ॥ ७९ ॥

अर्थ—अपने हितकारीजनोंमें पुण्यकूं और अहितकारी जनोंमें पापकूं फैंकके सनातनब्रह्मकूं ध्यानयोगसें प्राप्तहोवेहै अर्थात् हितकारीजन हितकर्मसें पुण्यभागी और द्वेषीजन द्वेषकर्मसें पापभागी होतेहैं अर सनातनब्रह्मकी प्राप्ति ध्यान योगसें होतीहै ॥

अव महाभारतकोभी देखो ॥

ज्योतिरात्मनिनान्यत्र सर्वजन्तुषुतत्समम् ।
स्वयंचशक्यतेद्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥

पर्व १२ ॥ अ० ३२६ ॥ ३२ ॥

अर्थ—चिन्मात्र ब्रह्म अपनें आपमें स्थितहै अर्थात् अन्य

किसीके आश्रित नहिंहै सोब्रह्म सर्वजीवोंमें समानहै सोब्रह्म सम्यक् समाहितचित्तसैं आपहि प्रत्यक्षकरसकीताहै ॥

हेमित्र यहांभी देखो प्रत्यक्षज्ञानका बोधक द्रष्टुंपद और समाधिवालेका बोधक समाहितपद स्पष्टहै ऐसे स्पष्टार्थ पदोंवाले आर्षप्रमाण माननीय होतेहैं ॥

वासिष्टमें तो उद्दालक वीतहव्य लीला चूडाला बलि आदिकोंके नानाउपाख्यानोंमें आत्मसाक्षात्कारलिये योग प्रकाशित हिंहै इससें वासिष्टके श्लोक इसछोटेसे ग्रन्थमें कहांतक लिखूं अगर लिखूं तो यिहग्रन्थ बहुतबडा होजायगा तथापि उपशम प्रकरणके दोश्लोक लिखताहुं ॥

वासनाक्षयविज्ञान मनोनाशामहामते ।
समकालंचिराभ्यस्ता भवन्तिफलदामुने ॥
एकैकशोनिषेव्यन्ते यद्येतेचिरमप्यलम् ।
तन्नसिद्धिंप्रयच्छन्ति मन्त्राःसंकीलिताइव ॥
प्र० ५ ॥ सर्ग ९२ ॥ १७ ॥ १८ ॥

अर्थ—अनुकूल प्रतिकूल पदार्थोंके ज्ञानतें जो तिनपदार्थों के संस्कार चित्तमेंउदयहोतेहैं सो फिरतिनपदार्थों की स्मृतिआं अर इच्छांके हेतुहोवेहैं वो संस्कार यहां वासना पदका अर्थहैं अर तिनसंस्कारोंका तिरोभावहोना क्षयशब्दका अर्थ जानना क्युंकि जबतक चित्तरहे तबतक तिनसंस्कारोंका अत्यन्तलय नहिंहोता किन्तु तिरोभूतहुए असंख्यात संस्कार चित्तमें

रहितेहैं जो स्मृतिआदिरूप वृत्तिओंके उत्पादनमें योग्य नहिं रहैं सो तिरोभूतसंस्कार कहेजातेहैं तिनहिकूं अनुद्बुद्धसंस्कार काहितेहैं ऐसा अनात्मपदार्थोंके संस्कारोंका तिरोभाव वासनाक्षय का अर्थहै ॥

'विज्ञान' संशयरहित आत्मज्ञान अर्थात् आत्माकारवृत्ति अनात्माकार वृत्तियोंका निरोध मनोनाशपदका अर्थहै ॥

हे 'मुने' वीतराग महामते राम—'तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षय' यिहतीनों 'समकाल' एककालमें एकठे चिरंकाल अभ्यासकिये आत्मसाक्षात्कारद्वारा मोक्षरूपफलके देनेवाले होतेहैं ॥ १७ ॥ यदि यिह एकएकका जुदाजुदा चिरंकालभी अतिशयकर अभ्यासकरें अर्थात् कदाचित् आत्माकार वृत्तिओंके प्रवाहरूप तत्त्वज्ञानका अभ्यासकरें और मनोनाश वासनाक्षयका अभ्यास नहिंकरें पुनः कदाचित् अनात्माकारवृत्तियोंके निरोधरूप मनो नाशका अभ्यास करें और तत्त्वज्ञान वासनाक्षयका अभ्यास नहिंकरें फिर कदाचित् आत्मज्ञानजन्य संस्कारोंके उत्पादनसें अनात्मपदार्थोंके संस्कारोंका तिरोभावरूप वासनाक्षयका अभ्यास करें और तत्त्वज्ञान मनोनाशका अभ्यास नहिंकरें इसप्रकार भिन्नभिन्नकालमें एकएकका जुदाजुदा अभ्यासकरें तो यिह आत्मसाक्षात्काररूप अर मोक्षरूप 'सिद्धिकूं' फलकूं नहिंदेसक्ते जैसे मन्त्रशास्त्रमें कथनकिये मूर्छामरणादिदोषोंसे प्रतिबद्ध मन्त्र फलनहिंदेते अर अनात्माकारवृत्तियोंके निरोधरूप मनोनाशसहित आत्माकारवृत्तिओंके प्रवाहरूप तत्त्वज्ञानके अभ्यासकरणेसें अनात्म

पदार्थोंके संस्कारोंका तिरोभावरूप वासनाक्षय साथहि होतारहे है इसप्रकार तत्त्वज्ञान मनोनाश वासनाक्षयका एककालमें एकठा अभ्यासहोताहै ऐसे इनतीनोंका एकठा चिरंकाल अभ्यासकरणे सें आत्मसाक्षात्कार अर आत्मसाक्षात्कारद्वारा मोक्षरूपफल प्राप्त होवैहै ॥ १८ ॥

विवेकचूडामणिमें श्रीभाष्यकारोंनेंभी कहाहै—

आप्तोक्तिंखननं तथोपरिशिला द्युत्कर्षणंस्वीकृतिं ।
निक्षेपः समपेक्षते नहिबहिः शब्दैस्तुनिर्गच्छति ॥
तद्वद्ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते ।
मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वंनदुर्युक्तिभिः ॥६५॥

अर्थ—निक्षेपनाम *निधिकाहै अपने बृद्धोंका पृथिवीमें दबाहुआजो निधिहै तिसके अज्ञातापुरुषको प्रथम 'आप्तोक्ति' ताके ज्ञाता यथार्थवक्ताका 'यहां निधि दबाहुआहै' ऐसाकथन फिर 'खनन' तिसपृथिवीका खोदना पुनः जो तिसनिधिउपरि शिलादि होवें तिनशिलादिकोंका उठाना फिर तिसका अंगीकार अर्थात् ग्रहणकर निकासना क्रमसें इन उपायोंसें सोनिधि प्राप्तहोताहै इससें अपनी प्राप्तिलीये इनउपायोंकूं निधि चाहिताहै इनउपायोंसें बिना शब्दोंकराहि निधि बाहिर नहिं निकसआता तैसे हि माया के कार्योंसें छिपाहुआ जो अपना निर्मलआत्मतत्त्वहै सो प्रथम ब्रह्मवेताने किया उपदेश फिर मनन पुनः ध्यान फिर आदिशब्द

*खजाना

काअथ समाधिक्रमसें इनउपायोंकर आत्मतत्व प्राप्तहोवेहै दुरा-ग्रहसे युक्तिओंकर प्राप्तनहिंहोता ॥

विवेकचूडामणिका होर श्लोक--

श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमुक्षो
र्मुक्तेर्हेतून्वक्तिसाक्षात्श्रुतेर्गीः ॥ ४६ ॥

अर्थ--मुमुक्षुजनको 'श्रद्धा भक्ति ध्यान योग' यिह क्रम सें मुक्तिके हेतु साक्षात्वेदवाणी कहेहै हेभ्रातृजन देखो वेदवाणी सें भाष्यकारस्वामी कैसे स्पष्टअर्थवाले पदोंसें मुक्तिकाहेतु ध्यान योगहि कहितेहैं ॥

आत्मपुराणमेंभी देखिये श्लोकः--

एषसंक्षेपतोयोगः कथितोऽत्रयतीश्वराः ।
योगगम्यमिमंदेव मात्मनंश्रृणुताधुना ॥
अ० ८ ॥ ५२६ ॥

अर्थ--हेयतीश्वरा ! यिह योग मैने संक्षेपसें कथन कियाहै 'योगगम्य' योगसें प्रत्यक्षहोनेयोग्य प्रकृतआत्मादेवकूं अब सुनो स्मरणकरो हेपाठक ! पूर्वस्मृतिमें आत्माका योगा-त्मा विशेषणकहाथा यहां आत्मपुराणमें योगगम्य विशेषण कहाहै ॥

बहुतक्या बिचारसागरमें निश्चलदासजीकोभी लिखनाहि पडा ॥

सवैया

स्थूलदेहकूं भाननहोवे स्वप्नमांहिलखिआत्मज्ञान

सूक्ष्मज्ञानसुषुप्तिसमेंनहिं सुखस्वरूपव्है आतमभान
भासेभयेसमाधिअवस्था निरावरणआतमनअज्ञान
ऐसेतीनदेहव्यभिचारी आतमअनुगतन्यारोजान।
॥ तरंग ॥ ५ ॥ छन्द ॥ १५८ ॥

हे भ्रातृगण! देखो यदिजाग्रदादि अवस्थामें आत्म साक्षात्कार होसक्ता तो समाधिअवस्थाहुए 'निरावरण' शुद्ध आत्मा 'भासै' प्रत्यक्षहोवेहै ऐसे निश्चलदासजी क्युं लिखते ॥

हे साधो! सर्वअनर्थोंके बीजरूप विपर्ययकी निवृत्तिभी निर्विकल्पसमाधि विना नहिं होसक्ती यिहभी विवेकचूडामणि वेदांतग्रंथमें श्रीशंकराचार्योंनें स्पष्ट लिखाहै ॥

आरूढशक्तेरहमोविनाशः
कर्तुंनशक्यःसहसापिपण्डितैः
येनिर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला
स्तानन्तरानन्तभवाहिवासनाः ॥ ३४२

अर्थ—चित्तशरीरादिकोंमें अहंतारूप दृढबलवालेविपर्यय का विनाश निर्विकल्पसमाधिमें निश्चलहुए पुरुषोंविना पंडितभी बलात्कारसे नहिंकरसक्ते क्युंकि अनंतजन्मोंसें विपर्ययके अनंत संस्कार होरहेहैं ॥

और देखो विवेकचूडामणिका श्लोक—

अज्ञानहृदयग्रन्थे र्निःशेषविलयस्तदा।
समाधिनाऽविकल्पेन यदाद्वैतात्मदर्शनम् ॥३५३॥

अर्थ—अज्ञानकृत विपर्ययका निःशेषविलय तबहोताहै जब निर्विकल्पसमाधिसें अद्वैतआत्माका साक्षात्कार होवेहै। ईश्रातः श्रीशंकराचार्योंके स्पष्टपदोंवाले इनश्लोकोंकूं देखकरभी यदितुम 'निर्विकल्पसमाधिविना आत्मसाक्षात्कार अर विपर्ययकी निवृत्ति होसकेहै' इस भ्रममूलकहठकूं नहिं छोडो तो भ्रमकी आश्चर्यहि महिमाहै ॥

हेसाधो ! 'समाधिविना' योगविना ब्रह्मका आत्माका साक्षात्कार नहिंहोता ऐसे प्रतिपादनकरणेवाले अनेकप्रबलप्रमाणों कूं कृपाकर सावधानतासें अब श्रवणकीजिये ॥

यजुर्वेदकी कठउपनिषदमेंभी कहाहै—

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः।
नाशान्तमानसोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

अ० १ ॥ वल्ली २ ॥ मं० २४ ॥

अर्थ—पापकर्मसें नहिं निवृत्तहुआपुरुष प्रकृतआत्माकूं नहिं प्राप्तहोता इन्द्रियोंकी चंचलतासें अशांतमनुष्यभी आत्माकूं नहिं प्राप्तहोता 'असमाहित' समाधिरहित अर्थात् व्युत्थितचित्तवाला पुरुषभी आत्माकूं नहिं प्राप्तहोता वा अवान्तरफलरूप सिद्धिओं सें अशान्तमनवाला अर्थात् समाहितहुआभी सिद्धिओंकी कामना वाला पुरुष प्रकृतआत्माकूं नहिं प्राप्तहोता किन्तु पापोंसें निवृत्त शान्तइन्द्रिय सिद्धिओंकी कामनासे रहित समाहितहुआ पुरुष आत्मसाक्षात्कारसें आत्माकूं प्राप्त होताहै निःशेषविपर्ययके अभाव

हुए केवलआत्मरूपसें स्थिति हि आत्माकी प्राप्तिजाननी जैसे रक्तपुष्पके दूरकिये शुद्धस्फटिकमणिकी अपने केवलरूपसें स्थिति होवेहै ॥

प्रबलप्रमाणरूप दक्षस्मृतिकूंभी देखोः--

स्वयंवेद्यंचतद्ब्रह्म कुमारीस्त्रीसुखंयथा ।
अयोगीनैवजानाति जात्यन्धोहियथाघटम् ॥

अ० ७ ॥ २६ ॥

अर्थ—अपनेसेंहि जाननेयोग्य सोब्रह्महै जैसे कुमारीस्त्री का संसर्गजन्यसुख अपनेसेंहि जाननेयोग्यहै अयोगीपुरुष ब्रह्मकूं नहिं जानसक्ता जैसे जन्मांधपुरुष नीलपीतादि घटकूं नहिं जानसक्ता ॥

महाभारतमेंभी स्पष्ट कहाहै श्लोक :—

नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः ।
अवबन्धोहिबुद्धस्य कर्मभिर्नोपपद्यते ॥

पर्व १२ ॥ अ० ३२१ ॥ ५२ ॥

अर्थ—योगसेंविना सोपरमगति प्राप्तनहिं होसक्ती अर जीवन्मुक्तविद्वान्को कर्मोंसे बंधन नहिंहोता ॥

अब वेदान्तग्रन्थ आत्मपुराणकूंभी देखिये श्लोक :—

योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ।
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा ॥

अ० ९ ॥ ७२२ ॥

अर्थ—प्रकृत आनंदरूप आत्मामहेश्वर एकयोगसेंविना 'नवाक्यसें' नशब्दसें प्राप्तहोसकेहै और न मनसें अर्थात् नश्रवण सें नमननसें प्राप्त होसकेहै न चक्षुःसें प्राप्त होसकेहै ॥

देखो हेभ्रातः दक्षस्मृति महाभारत आत्मपुराणमें स्पष्ट अर्थवाले पदोंसें योगविना श्रवणमननरूप सांख्यसें ब्रह्मसाक्षात्कार का अभावकहाहै ऐसे स्पष्टप्रमाणोंकूं देखकरभी यदितुम हठकूं नहिं छोडो तो आपकी इच्छा ॥

निर्विकल्पसमाधिविना ब्रह्मसाक्षात्कारका अभाव श्रीशंकराचार्योंनेभी विवेकचूडामणिमें कहाहै ॥

निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ।
ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ॥
नान्यथाचलतयामनोगतेः ।
प्रत्ययान्तरविमिश्रितंभवेत् ॥ ३६५ ॥

अर्थ—निर्विकल्पसमाधिसें ब्रह्मतत्त्व स्फुट साक्षात्करियेहै अन्यथान' निर्विकल्पसमाधिविना ब्रह्मतत्त्व प्रत्यक्ष नहिं करसकीता क्युंकि व्युत्थानावस्थामें मनकी दशाको चंचलहोनेकर अनात्माकार वृत्तिओंसें मिश्रितमन होताहै ॥

और यिहभी विदितरहे कि शब्दअर्थज्ञानके विकल्पोंसें रहितजो संप्रज्ञातसमाधि ताकूं निर्विकल्पसमाधि काहितेहैं ॥

विवेकचूडामणिका और श्लोक

अतीवसूक्ष्मंपरमात्मतत्त्वं ।

नस्थूलदृष्ट्याप्रतिपत्तुमर्हति ॥
समाधिनात्यन्तसुसूक्ष्मवृत्त्या ।
ज्ञातव्यमार्य्यैरतिशुद्धबुद्धिभिः ॥ ३६० ॥

अर्थ—परमात्मतत्त्व अत्यन्तसूक्ष्महै सोऽव्युत्थानावस्थाकी स्थूलदृष्टिसें प्रत्यक्षनहिं करसकीता किन्तु अतिशुद्धबुद्धिवाले पुरुषोंने समाधिरूप अत्यन्त सूक्ष्मवृत्तिसें प्रत्यक्षकरणे योग्यहै ॥

पूर्वपक्षी—अष्टावक्रगीतामें कहाहै कि यिही तेरे बन्धहै जो तूं समाधिका अनुष्ठान करेहै ॥

सिद्धान्ती—प्रथमतो जैसे महाभारतमें श्रीवेदव्यासरचित कृष्णअर्जुनका संवादरूप भगवद्गीताग्रंथहै तैसे यिह अष्टावक्रगीता ग्रन्थ किसने रचाहै यिह प्रसिद्धहिनहिंहै हेपाठक यहां प्रमाणों की प्रबलता दुर्बलताकूंभी स्मरणकिया चाहिये कि उक्त प्रबल प्रमाणरूप अनेकश्रुतिवाक्यनसें विरुद्धअर्थ माननीय नहिंहोसका और विचारिये कि यदि परमात्मामें चित्तकी संलग्नतारूप समाधि के अनुष्ठानकूं बंधरूपकहैं तो चंचलावस्थाकूं क्याकहैंगे ॥

वास्तवमें वहां अष्टावक्रगीतामें तात्पर्य यिहहै कि अणिमा महिमाऽऽदिक सिद्धिओंकीहि कामनासें जो समाधिका अनुष्ठान है सोबंधहिहै और मोक्षलिये समाधिका अनुष्ठान बंधका निवर्तक है क्युंकि अष्टावक्रगीतामेंहि देखो कहेहैं श्लोक—

आचक्ष्वश्रृणुवातात नानाशास्त्राण्यनेकशः ॥
तथापिनतवस्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ प्र० १६ ॥ १ ॥

हरोयद्युपदेष्टाते हरिःकमलजोऽपिवा ।
तथापि नतवस्वास्थ्यं सर्वविस्मरणादृते ॥ ११ ॥

अर्थ—'हेतात' हेशिष्य नानाशास्त्रोंकूं अनेकप्रकारसें तूं कथनकर वा श्रवणकर तोभी सर्वके विस्मरणसें विना अर्थात् असंप्रज्ञातसमाधिविना तुझके कल्याण नहिंहोगा ॥ १ ॥ यदि महादेवभी तेरा उपदेष्टाहोवे अथवा विष्णु वा ब्रह्माभी तेरा उपदेष्टाहोवे तोभी सर्वके विस्मरणसें विना अर्थात् असंप्रज्ञात समाधिविना तुजके कल्याण नहिंहोगा ॥ ११ ॥ विदितरहेकि सर्वका विस्मरण असंप्रज्ञात योगावस्थामेंहि होताहै क्युंकि सुषुप्ति अवस्थामेंभी 'अज्ञानविषयक' तमोगुणविषयक वृत्ति ज्ञान होवे हिहै ॥

पूर्वपक्षी—श्वेताश्वतरोपनिषद्में सांख्यसेंभी ब्रह्मसाक्षात्कार कहाहै देखो—

तत्कारणंसांख्ययोगाधिगम्यम् ॥

अर्थ—जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलयका कारण 'सो' प्रकृतब्रह्म सांख्यसें तथा योगसें प्राप्त होनेयोग्यहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः इस प्रमाणकूं कथनकर्तें आपसें पूछताहुं कि सो प्रकृतब्रह्म सांख्यसें तथा वा योगसें प्राप्तहोने योग्यहै इसप्रकार विकल्पसें आप अर्थ कर्तेंहो अथवा सांख्ययोग दोनोंसें अर्थात् 'सांख्यसें संशयरहित परोक्षज्ञानहुए योगसें ब्रह्म की 'प्राप्ति' साक्षात्कार होताहै' इसप्रकार सांख्ययोगके क्रम

समुच्चयसें प्राप्तहोने योग्यहै ऐसे अर्थकर्तेहो इनमें प्रथमपक्ष तो समीचीन नहिं क्युंकि उक्त उपनिषद्वाक्यमें वा पद या तथा पद नहिंहै किन्तु सांख्ययोगका द्वन्द्वसमासहै सो द्वन्द्वसमास (चअर्थमें) समुच्चयार्थमें होताहै इससें सांख्ययोग का क्रमसमुच्चय हि संभवेहै विकल्प संभवेनहिं ॥

हेमित्र देखो इस उक्त उपनिषद्वाक्यमेंभी विकल्प का बोधक वापद नहिंहै अर भाष्यकारभी इसमंत्रके भाष्यमें सांख्य योगका विकल्पसें अर्थ नहिंकर्ते और इस उपनिषद्वाक्यपर विज्ञान भगवत्कृत विवरणादिकोंमेंभी सांख्ययोगका विकल्प नहिंलिखा किन्तु सांख्ययोगका द्वन्द्वसमाससें समुच्चयहि बोधन कियाहै तो हेभ्रातः भाष्यकारोंसें तथा विज्ञान भगवत्आदिकोंसें विरुद्ध कथन आपका कैसे माननीय होसक्ताहै और देखिये—

नाशान्तोनासमाहितः—नास्यसदाग्राह्यत्व मग्राह्यत्वंवा समाध्यवस्थायां प्रत्यक्त्वेनभानात्—
अयोगीनैवजानाति जात्यन्धोहियथाघटम्—
नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः—
योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ॥
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा—
निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् नान्यथा

इत्यादिक जो उक्तप्रमाण योगविना ब्रह्मसाक्षात्कारका

अभाव कहितेहैं उन अनेकप्रमाणोंसेंभी विरुद्धहोनेसें आपका प्रथमपक्ष समीचीननहिं ॥

पुनः यदि द्वितीयपक्ष कहो तो यद्यपि सत्यहै सांख्यसें परमात्माका संशयरहित परोक्षज्ञान हुएसें अनन्तर निदिध्यासन द्वारा योगावस्थामें ब्रह्मसाक्षात्कार होताहै तथापि योगनिरपेक्ष सांख्यसें ब्रह्मसाक्षात्कार सिद्ध नहिंहोता ॥

आश्चर्यहै आश्चर्यहै कि हेप्रियभ्रातः स्पष्टार्थपदोंवाले मैं अनेकश्रुतिवाक्य लिखआयाहुं उनकूं विस्मरणकर्के आपनें बहुत कालसें एकहि यिह श्रुतिवाक्य निकाला तिससेंभी योगनिरपेक्ष सांख्यसे आत्मसाक्षात्कार सिद्ध नहिंहुआ ॥

पूर्वपक्षी—यद्यपि उक्तश्रुतिसें योगनिरपेक्षसांख्यसें परमात्मसाक्षात्कार सिद्ध नहिंहुआ तथापि श्रीभगवद्गीताका श्लोक तो देखिये —

यत्सांख्यैः प्राप्यतेस्थानं तद्योगैरपिगम्यते ॥

अ० ५ ॥ ५ ॥

एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विन्दतेफलम् ॥

अ० ५ ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस ब्रह्मको 'सांख्यी' श्रवणादिकोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुष प्राप्त होतेहैं तिसीब्रह्मको 'योगी' निर्गुणके ध्यानी पुरुषभी प्राप्तहोतेहैं। इनदोनों साधनोंमें किसीएककोभी सम्यक् सांगोपांग अनुष्ठानकर्तापुरुष दोनोंके फलमोक्षको विद्याद्वारा प्राप्त

होताहै इति ॥

यद्यपि इसवाक्यमें योगपदको निर्गुणध्यानपरता नहिं सिद्ध होसक्ती क्युंकि गीताभाष्यमें भाष्यकारोंने तिस योगपदको कर्मयोगपरताकर व्याख्यान कियाहै तिनसे विरोध होगा तथापि योगपदको ध्यानमें रूढ होनेकर वास्तवसें कर्मपरताका अभावहैं और इसवचनके मूलभूत पूर्वउदाहरण कीहुई श्रुतिमें योगपदका ध्यानअर्थ भाष्यकारोंने शारीरकभाष्यमें कथनकियाहै इसकारणसे इसगीतावाक्यमेंभी योगपद ध्यानका ही वाचकहै और कर्मयोग को 'मुख्ययोग' निर्गुणध्यानद्वारा ब्रह्मज्ञानकी साधनताहै साक्षात्सा-धनता नहिं इसअर्थके बोधनकरणेलिये कर्मविषयक योगपदका प्रयोग श्रीभगवान्जीका तथा तिसके अनुसारी भाष्यकारोंका व्याख्यान कर्मपरतासें संभवताहै यातें तिनसें किंचित्भी विरोध नहिं ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र यिहजो आपने भगवद्गीताके आधे आधे श्लोकदो पीछेआगेकर कथनकियेहैं इनमें तो सांख्यपदका संन्यास अर योगपदका कर्मयोग अर्थहै श्री शांकरभाष्यमेंभी सांख्यका संन्यास योगका कर्मयोग हि अर्थ कियाहै अर आपभी ऐसेहि लिखतेहैं कि 'इसवाक्यमें योगपदको निर्गुणध्यानपरता नहिं सिद्ध होसक्ती क्युंकि गीताभाष्यमें भाष्यकारोंने तिसपदको कर्मयोगपरताकर व्याख्यान कियाहै' ऐसे आपहि लिखकर फिर अन्यथा अर्थ लिखते लज्जाभी नहिं करी और आपने कथनकरा जो श्रुतिवाक्य सो इसवचनका मूलनहिंहै अर भाष्यमेंभी ऐसेनहिंलिखा

है किन्तु गीता—

संन्यासंकर्मणांकृष्ण पुनर्योगंचशंससि।
यच्छ्रेयएतयोरेकं तन्मेब्रूहिसुनिश्चितम्॥

अ० ५॥ १॥

अर्थ—हेकृष्ण कर्मोंके संन्यासकी आप स्तुति कर्तेहो पुनः निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानरूप कर्मोंके योगकी आप स्तुति कर्तेहो इनदोनोंमें जो एक निश्चित कियाहुआ श्रेष्ठहै सोमेरेकूं कहो, ऐसा जो अर्जुनने प्रश्न कियाथा उसका उत्तर विस्तारसे चला हुआहै तिससें विपरीत तो आपकी असत्कल्पना माननीय नहिं होसक्ती विद्वज्जन प्रसंगानुसारी हि अर्थकल्पना कर्तेहैं यहां पंचमाध्याय के आदिश्लोकमें कर्मसंन्यास कर्मयोगविषयक हि अर्जुनका प्रश्न है तिसप्रश्नके उत्तररूप इनश्लोकोंमेंभी कर्मसंन्यास कर्मयोगका हि विचारहै ऐसे प्रश्नउत्तरसें कर्मसंन्यास कर्मयोगकाहि प्रसंगहै। यद्यपि योगपदका मुख्यार्थ समाधिहै निष्काम कर्मोंको योगका साधन होनेसें निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानका योगनाम गौणहै तथापि जैसा कर्मसंन्यास कर्मयोगरूप गौणयोगविषयक अर्जुनका प्रश्नहै तैसाहि उत्तरसंभवेहै 'तैसाहि' प्रश्नानुकूल कर्मसंन्यास कर्मयोगविषयक भगवत्कृष्णचन्द्रने उत्तर दियाहै वैसेहि भाष्यकारोंनें भाष्यमें व्याख्यान कराहै इसअर्थसें किंचिद्भी विपरीत अर्थ कोई करे तो ताकूं भाष्योत्कर्ष दीपिकाटीका ताडन कर्तीहै सो देखलीजिये॥

आश्चर्यहै कि प्रकरणसें विरुद्ध अर श्रीशांकरभाष्यसें विरुद्ध तथा भाष्योत्कर्षदीपिकाऽऽदिकोंसें विरुद्ध अर्थ कर्तेहुए आपने सत्यमिथ्यामें दृष्टि तो नहिं दी परन्तु विद्वज्जनोंसें लज्जा भी नहिंकरी ॥

पूर्वपक्षी—यद्यपि उक्तश्लोकोंमें प्रकरणसें तथा भाष्यकारोंके व्याख्यानसें सांख्यपदका कर्मसंन्यास अर योगपदका कर्मयोग रूप गौणयोग अर्थहै तथापि गीताके त्रयोदशाध्यायमेंतो भगवत् जीने स्पष्ट ही आत्मविद्याके दोनों साधन विकल्पकर्के निरूपण कियेहैं तथाहि--

ध्यानेनात्मनिपश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्येसांख्येनयोगेन कर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥

अर्थ---केईकयोगी ध्यानयोगकर चित्तमें आत्माकूं एकाग्र मनसें साक्षात्करेहैं औरकेई सांख्ययोगसें आत्माकूं प्रत्यक्ष कर्तेहैं औरकेई कर्मयोगसें साक्षात्करेहैं देखो यहां ध्यानयोगसेंभी आत्म· साक्षात्कार कहाहै और सांख्ययोगसेंभी आत्मसाक्षात्कार कहाहै॥

सिद्धान्ती—हेसाधो यहां तो आत्मसाक्षात्कारके तीनसाधन केहैं आप एककूं छोडकर दो क्युं कहितेहो देखिये इसगीता श्लोकमें जैसे सांख्ययोगसें आत्मसाक्षात्कार कहाहै तैसे कर्मयोग सेंभी आत्मसाक्षात्कार कहाहै तो हेमित्र क्या कर्मयोगसेंभी आत्म साक्षात्कार होसकेहै ॥

पूर्वपक्षी—कर्मयोगसें अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा सांख्य

अथवा योगमैं आरूढ होकर आत्मसाक्षात्कार होताहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः सांख्यसैंभी योगद्वाराहि परमात्म साक्षात्कार होताहै इससैं कर्मयोगकी न्यांई सांख्ययोग ध्यानयोग काभी क्रम समुच्चय हि ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतुहै क्युंकि विकल्प का बोधक अथवापद या वापद मूलगीताश्लोकमैं नहिंहै अर भाष्यमैंभी योगसैं अथवा सांख्यसैं आत्मप्रत्यक्ष होताहै, ऐसा अर्थ नहिं करा तो तिनसैं विरुद्धजो अथवा पदकूं अपनी गिरासैं खर्चकर सांख्ययोगका विकल्प आप कहितेहो सो द्वितीय युक्ति प्रकाशमैं वक्ष्यमाणयुक्तियोंसैं तथा—

नाशान्तोनासमाहितः—नास्यसदाग्राह्यत्व मग्राह्यत्वंवा समाध्यवस्थायां प्रत्यक्त्वेनभानात्—
अयोगीनैवजानाति जात्यन्धोहियथाघटम्—
नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः—
योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ॥
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा—

इत्यादिक उक्त श्रुतिस्मृतिप्रमाणोंसैं विरुद्धहोनेतैं समीचीन नहिं किंतु उत्तमाधिकारी ध्यानयोगसैं आत्मसाक्षात्कार कर्तेहैं। मध्यमाधिकारी सांख्यसैं ध्यानोत्पत्तिद्वारा आत्मप्रत्यक्ष कर्तेहैं। मंदाधिकारी कर्मयोगसैं चित्तशुद्धिहुए श्रवणमननरूपसांख्य पुनः ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा आत्मसाक्षात्कर्तेहैं इसप्रकार कर्मयोग सांख्ययोग ध्यानयोग इनतीनों साधनोंका क्रमसमुच्चयहि युक्ति प्रमाणोंसेसिद्धहै विकल्पासिद्ध नहीं इससे इनका क्रम समुच्चयही समीचीन है ॥

पूर्वपक्षी—इनतीनों साधनोंका क्रमसमुच्चय कहां कहा है ॥

सिद्धान्ती—इसी गीताश्लोककी व्याख्याओंमें कहाहै देखिये महाभारतके टीकाकार श्रीपण्डित नीलकण्ठकृत नील-कण्ठीमें—

ये कर्मसांख्ययोर्निष्णातास्ते ध्यानेनपश्यन्ति अन्येसांख्येनयोगेन ध्यानद्वारापश्यन्ति । अन्ये पुनःकर्मयोगेनैव सांख्यध्यानद्वारा पश्यंतीति साधन त्रयस्य समुच्चयो नतुविकल्पः ॥

अर्थ—जो कर्म और सांख्यकूं सम्यक् करचुकेहैं वो ध्यान सें परमात्माकूं साक्षात्कर्तेहैं । और सांख्यी सांख्ययोगसें ध्यान द्वारा साक्षात्कर्तेहैं पुनः और कर्मयोगी कर्मयोगसेंभी सांख्यध्यान द्वारा प्रत्यक्ष कर्तेहैं ऐसे साधनत्रयका समुच्चयहै विकल्प नहिंहै ॥

इस श्लोककी मधुसूदनीटीकाभी अब देखिये—

ध्यानेनआत्मनिबुद्धौपश्यन्ति आत्मानंध्यान संस्कृतेनान्तःकरणेन केचिदुत्तमायोगिनः । अन्ये मध्यमाः सांख्येनयोगेन निदिध्यासनपूर्वभाविना श्रवणमननरूपेण पश्यन्ति ध्यानोत्पत्तिद्वारेणेत्यर्थः । कर्मयोगेन चापरे मन्दाः पश्यन्ति सत्त्वशुद्ध्या श्रवण मननध्यानोत्पत्तिद्वारेणेत्यर्थः ॥

अर्थ—केईक उत्तमाधिकारी योगीजन ध्यानजन्यसंस्कारों वाले मनसें ध्यानकर्के बुद्धिमें आत्माकूं प्रत्यक्षकर्तेहैं और मध्यमाधिकारीजन निदिध्यासनतें पूर्वभावी श्रवणमननरूप सांख्ययोग सें ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा आत्मसाक्षात्कर्तेहैं और मंदाधिकारीजन कर्मयोगकर चित्तशुद्धिसें श्रवणमननध्यानकी उत्पत्तिद्वारा आत्म प्रत्यक्ष करेहैं ॥

इसश्लोककी भाष्योत्कर्षदीपिकाटीकामेंभी स्पष्टकहाहै देखो—

केचिदुत्तमाधिकारिणोयोगिनः निदिध्यासना परपर्यायेणध्यानेनात्मनिबुद्धौ आत्मानं पश्यन्ति अन्येमध्यमाधिकारिणः सांख्येनयोगेन ध्यानोत्पत्तिद्वारापश्यन्ति अपरेमन्दाधिकारिणः कर्मयोगेन सत्त्वशुद्धि श्रवणमनन ध्यानपरोक्षज्ञानोत्पत्तिद्वारेण पश्यन्ति ॥

अर्थ—केई उत्तमाधिकारीयोगी निदिध्यासनहै नामांतर जिसका ऐसे ध्यानसें बुद्धिमें आत्माकूं प्रत्यक्ष करेहैं और मध्यमाधिकारीजन सांख्ययोगसें ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा साक्षात्कर्तेहैं और मन्दाधिकारीजन कर्मयोगसें चित्तशुद्धि श्रवणमननध्यान परोक्ष ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा प्रत्यक्षकर्तेहैं इसीप्रकार श्रीधरीआदिटीकों मेंभी स्पष्टपदोंसें कर्मयोग सांख्ययोग ध्यानयोगका क्रमसमुच्चय ही कहाहै ॥

पूर्वपक्षी—नीलकण्ठी मधुसूदनी भाष्योत्कर्षदीपिका श्री-

धरीआदि टीकाओंमें कर्मयोग सांख्ययोग ध्यानयोग इन साधन त्रयका क्रमसमुच्चय स्पष्टहि कहाहै तो शांकरभाष्यमें इसश्लोक की अवतारणिकामें [अत्रात्मदर्शने उपायविकल्पाइमे ध्यानादय उच्यन्ते] इस आत्मदर्शनमें उपायविकल्प यिह ध्यानादिक कहिये हैं ऐसे क्युं कहाहै ॥

सिद्धान्ती—इस आत्मदर्शनमें यथाधिकार उपायकल्पन रूप यिह ध्यानादिक कहियेहैं यिह अवतारणिकाका अर्थहै अर्थ यिह उत्तमाधिकारी 'यथाधिकार' अपनेअधिकारसें ध्यानयोग करे और मध्यमाधिकारी यथाधिकार सांख्ययोग करे अर मन्दाधिकारी अपने अधिकारसें कर्मयोगकरे इसप्रकार यथाधिकार ध्यानादिउपाय *कल्पनकरियेहैं यिह अवतारणिकाका अर्थहै ॥

विदितरहे कि विकल्पशब्दके भ्रान्ति, कल्पन, नानाविध, इत्यादिक अनेक अर्थहैं सो शब्दकल्पद्रुमआदि कोषग्रन्थोंमें दृष्टान्तों सहित कहेहैं यदि संशयहोवे तो वहांसें देखलेवें मेदिनी कोशमेंभी कहाहै 'विकल्पः पुंसिभ्रान्तौचकल्पने' विकल्प शब्द पुलिङ्गहै भ्रांति अर कल्पनका वाचकहै ॥

पूर्वपक्षी—आत्मदर्शनके 'हेतु' †उपाय यथाधिकार कहिये हैं ऐसा उक्त अवतारणिकाका अर्थ कहां कियाहै ॥

सिद्धान्ती—इसीश्लोकके भाष्यकी आनन्दगिरिटीकामें कियाहै सोटीकादेखिये

---

* कल्पना † साधन

तदद्दष्टिहेतून् यथाधिकारं कथयति अत्रेति--केचिदित्युत्तमाधिकारिणोगृह्यन्ते--मध्यमाधिकारिणो निर्दिशति अन्यइति-अधमानऽधिकारिणः संगिरते कर्मेति ॥

अर्थ—भाष्यकारस्वामी 'अत्र' इत्यादि भाष्यसैंतिसआत्मदर्शनकेहेतुओंकूं यथाधिकार कथनकर्तेहैं केचिद् इसपदसें उत्तमाधिकारी ग्रहणकियेहैं अन्य इसपदसें मध्यमाधिकारीओंकूं कथन करेहैं 'कर्म' इत्यादिभाष्यसें मंदाधिकारीओंकूं कथनकर्तेहैं इति ॥

इसप्रकार हेमित्र उत्तम, मध्यम, मंद, अधिकारीओंलिये यथाऽधिकार ध्यानादिउपाय कल्पनकरियेहैं यिह अवतारणिका का अर्थ भाष्यकी आनन्दगिरिटीकाऽनुसारीहै इससें कर्मयोग सांख्ययोग, ध्यानयोग, इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय वाञ्छित होनेसें इसश्लोकके व्याख्यानमें भाष्यकारोंने योगसें वा सांख्यसें आत्मप्रत्यक्ष होताहै ऐसे वापद, अथवा पद, नाहिंरखा यदि इन साधनत्रयका विकल्प वाञ्छितहोता तो इसश्लोकके अर्थमें भाष्यकार वापद अवश्यं रखते ॥

हेभ्रातः कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय यदि आत्मसाक्षात्कारका साधन नहिंमानोंगे किन्तु सांख्य योगका विकल्प मानोंगे अर्थात् योगनिरपेक्ष सांख्यसेंभी आत्मसाक्षात्कार मानोंगे तो अनेकदोष प्राप्त होंगे सो सुनिये—

१—उक्तगीताश्लोकमें वापद नाहिंहै किन्तु ध्यानयोगसें अर

सांख्ययोगसें तथा कर्मयोगसेंभी आत्मसाक्षात्कार कहाहै याहेतु से ध्यानयोगनिरपेक्ष सांख्ययोगकीन्यांई ध्यानयोग निरपेक्ष तथा सांख्ययोग निरपेक्ष केवल कर्मयोगसेंभी आत्मसाक्षात्कार मानना होगा सोतुमारेकूंभी इष्ट नहिंहै ॥

२—यदि कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग, इनसाधनत्रय का क्रमसमुच्चय आत्मसक्षात्कारका साधन नहिंमानोंगे तो नील-कण्ठी मधुसूदनी भाष्योत्कर्षदीपिका श्रीधरीआदि टीकाओंसें विरोधहोगा क्युंकि इनटीकाओंमें उक्तसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय स्पष्टकथनकियाहै सो टीका लिखचुकाहुं ॥

३—यदि इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय नहिंमानोंगे किन्तु योगनिरपेक्ष सांख्यसेंभी आत्मसाक्षात्कार मानोंगे तो—

नाशान्तोनासमाहितः—नास्यसदाग्राह्यत्व
मग्राह्यत्वंवा समाध्यवस्थायां प्रत्यक्त्वेनभानात्—
अयोगीनैवजानाति जात्यन्धोहियथाघटम्—
नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः—
योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ॥
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा—

इत्यादि श्रुतिस्मृतिरूप प्रबलप्रमाणोंसें विरोध होगा क्युंकि उक्तश्रुतिस्मृति प्रमाणोंमें 'समाधिविना' योगाविना आत्म-साक्षात्कारका अभाव कहाहै ॥

४—नाशान्तोनासमाहितः इत्यादि उपनिषद्मंत्रके शांकर भाष्यसें विरोधहोगा तथा विवेकचूडामणिमें—

निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् नान्यथा

इत्यादिक भाष्यकारोंके कथनसें विरोधहोगा क्युंकि उक्त उपनिषद्मंत्रके भाष्यमें तथा विवेकचूडामणिके श्लोकमें भाष्यकार स्वामी श्रीमुखसें समाधिविना 'आत्मसाक्षात्कारका' ब्रह्मप्रत्यक्ष का अभाव कथन कर्तेहैं ॥

५—यदि योगनिरपेक्ष सांख्यसेंभी आत्मसाक्षात्कार मानोंगे तो विवेकचूडामणिके—

श्रुतेः शतगुणंविद्यान्मननंमननादपि ॥
निदिध्यासंलक्षगुण मनन्तंनिर्विकल्पकम् ॥३६४॥

इस श्लोकसें भाष्यकारोंका निर्विकल्पसमाधिमें साधनोंकी समाप्तिका कथन असमीचीन होगा ॥

श्लोकका अर्थ—श्रवणसें सौगुण अधिकफलवाला मननकूं जानो मननतेंभी लक्षगुण आधिक फलवाला निदिध्यासनकूं जानो निदिध्यासनसें अधिक अनंतफलवाला निर्विकल्पसमाधिकूं जानो देखो यहां भाष्यकारोंने साधनोंकी समाप्ति श्रवणमननरूप सांख्यमें नहिंकही किंतु सांख्यरूप श्रवणमननसें लक्षगुण अधिक फलवाला निदिध्यासन, निदिध्यासनसें अनंतगुण अधिकफल

वाला निर्विकल्पसमाधि कहनेसें निर्विकल्पसमाधिमें साधनोंकी समाप्ति कहीहै विवेकचूडामणिके इसश्लोककी टीकामें श्रीपंडित केशवानन्दजीभी ऐसेहि लिखतेहैं देखो—

कर्त्तव्यस्य फलप्राप्तेश्च निर्विकल्पसमाधिरवधिरितिभावः॥

अर्थ—*कर्तव्यका और फलप्राप्तिका अवधि निर्विकल्प समाधिहै यिह श्लोकका तात्पर्यहै ॥

६—यदि उक्त साधनत्रयका क्रमसमुच्चय आत्मसाक्षात्कार का साधननहिं मानोंगे किंतु योगनिरपेक्ष सांख्यसेंभी आत्मप्रत्यक्ष मानोंगे तो द्वितीययुक्तिप्रकाशमें वक्ष्यमाण अनेक युक्तियोंसें विरोधहोगा इससें हेमित्र ! वक्ष्यमाणअनेकयुक्तियोंसें तथा उक्त वक्ष्यमाण अनेकश्रुतिस्मृतिआदि प्रबल प्रमाणोंसें कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग इन साधनत्रयका क्रमसमुच्चयाहि आत्म साक्षात्कारका साधनहै ॥

क्युंकि कर्मयोग कियेबिना मलिनचित्तमें विवेक वैराग्यादिक उदय नहिंहोते इससें श्रवणमननरूप सांख्यमें अधिकार भी नहिंहोता तो ध्यानादिक कैसे होसक्तेहैं याते सांख्ययोग ध्यानयोग दोनोंसाधनोंका हेतु कर्मयोग प्रथम अवश्यं करा चाहिये। पुनः सांख्ययोगाविना ध्यानयोग नहिंहोसक्ता क्युंकि सर्वथा अश्रुत अज्ञातपदार्थके आकार तो एकवृत्तिभी नहिंहोती

* साधन का

तो तदाकार सदृशवृत्तिओंका प्रवाहरूप ध्यान कैसे होसक्ताहै। श्रवणके अभ्यासकर परमात्माकार वृत्ति उदयहुएभी 'असंभावना के' संशयके विद्यमानहोते निःशंका ध्यानके अभ्यासमें प्रवृत्ति नहिंहोती तो ध्यान कैसेसिद्ध होसकेहै किंतु श्रवणमननरूप सांख्यके अभ्यासकरनेसें हि संशयरहित परोक्षज्ञानरूप परमात्माकार वृत्ति उदय होतीहै तदनंतर हि दीर्घकाल निरंतर अभ्यास सें ध्यानयोग होसकेहै याते ध्यानयोगका हेतु सांख्यहै इसलिये ध्यानयोगसें प्रथम सांख्ययोग अवश्यं करणीयहै पुनः अतींद्रिय पदार्थोंका प्रत्यक्ष समाधिविना नहिंहोता यिह नियमहै इसीहेतुतें नाशान्तोनासमाहितः—अयोगीनैवजानाति—इत्यादिक उक्तश्रुति स्मृतिवाक्य समाधिविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहितेहैं या हेतुतें सांख्ययोगसें अनन्तर आत्मसाक्षात्कार लिये ध्यानयोग अवश्यं करणीयहै। इसप्रकार कर्मयोग सांख्ययोग ध्यानयोग इन तीनों साधनोंका क्रमसमुच्चयहि आत्मसाक्षात्कारका हेतुहै इन तीनोंके क्रमसमुच्चयमें औरभी उपनिषद् तद्भाष्यादिक प्रमाणोंकूं लिखूंगा॥

पूर्वपक्षी—श्रीवसिष्टजीने वासिष्टग्रन्थमें बहुलतासें विचार कोहि आत्मज्ञानकी हेतुता निरूपण कीहै देखिये—

**सामान्येनविचारेण क्षयमायातिदुष्कृतम्।**
**योग्यवाक्यविचारेण कोनयातिपरंपदम्॥**

उ० प्र०॥ स० ८॥ ४१॥

अज्ञानमुच्यतेपापं तद्विचारेण नश्यति।
पापमूलच्छिदंतस्माद्विचारंन परित्यजेत् ॥

स० ८ ॥ ४२ ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र वासिष्टके अष्टमसर्गमें यिह श्लोकनहिंहै किंतु ४२वें सर्गमें भक्तप्रह्लादको जैसे योगद्वारा बोधकी प्राप्ति हुईहै तिसप्रसंगके विचारका माहात्म्य पांचश्लोकोंसें कहाहै उन में यिहश्लोकहैं तामेंभी 'योग्यवाक्यविचारेण' ऐसापाठ नहिंहै किंतु 'योगवाक्यविचारेण' ऐसा पाठहै इससें सर्गांक श्लोकांककूं बदिलकर तुमने पाठ बदिलदिया अर्थात् तुमने धोखादिया बंचनाकरी सो ऐसेकरणा आस्तिकोंको उचित नहिंहै सो पांच श्लोक यिहहैं—

एषातेकथिताराम निःशेषमलनाशिनी ।
प्राह्लादीबोधसंप्राप्ति रैन्दवद्रवशीतला ॥

स० ४२ ॥ ५ ॥

तांतुयेमानवालोके बहुदुष्कृतिनोपिहि ।
धियाविचारयिष्यन्ति तेप्राप्स्यन्त्याचिरात्पदम् ॥

स० ४२ ॥ ६ ॥

सामान्येनविचारेण क्षयमायातिदुष्कृतम् ।
योगवाक्यविचारेण कोनयातिपरंपदम् ॥

४२ ॥ ७ ॥

अज्ञानमुच्यतेपापं तद्विचारेणनश्यति ।
पापमूलच्छिदंतस्माद्विचारंन परित्यजेत् ॥

स० ४२ ॥ ८ ॥

इमाप्रह्लादसंसिद्धिंप्रविचारयतांनृणाम् ।
सप्तजन्मकृतंपापं क्षयमायात्यसंशयम् ॥

स० ४२ ॥ ९ ॥

अर्थ—हेराम समग्रमलकी नाशिनी अमृतकी न्यांई शीतला यिह प्रह्लादके बोधकीप्राप्ति तुजकूं कही ॥ ५ ॥ लोकमें बहुतपापोंवालेभी जो मनुष्य बुद्धिसें तिसकूं विचारेंगे वोभी शीघ्र उत्तमपदकूं प्राप्तहोवेंगे ॥ ६ ॥ सामान्य विचारसें पापनष्ट होताहै 'योगवाक्यनके' प्रह्लादजीको जैसे समाधियोग प्राप्तहुआ तिन वाक्यनके विचारसें कौन परमपदकूं नहिंप्राप्तहोता ॥ ७ ॥ अज्ञानपाप कहियेहै सोविचारसें नष्टहोताहै पापोंके मूलकूं काटने वाले विचारकूं नहिंत्यागे ॥ ८ ॥ इसप्रह्लादकी सिद्धिकूं विचारते हुए पुरुषोंके सप्तजन्ममें कीयेपाप नष्ट होजातेहैं यामें संशय नहिंहे ॥ ९ ॥

हेभ्रातः विचारबिना शुभकर्मोंमें प्रवृत्ति कुकर्मोंसें निवृत्ति नहिंहोती इससें विचारबिना पाप नष्ट नहिंहोते याहेतुतें विचार बिना वैराग्य उदय नहिंहोता इससें विचारबिना शम दम श्रद्धा समाधानादि साधन प्राप्तनहिंहोते विचारबिना शास्त्रका अर्थ अथार्थ नहिंभास्ता विचारबिना परमात्माकार वृत्ति उदय नहिं

होती यातें विचारबिना परमात्मामें धारणा नहिंहोसक्की यातें विचारबिना ध्यानरूप निदिध्यासन नहिंहोसक्का तो विचारबिना समाधि कैसे होसकेहै समाधि हुएभी विचारबिना सिद्धिओंके जालमें फसजातेहैं बहुतक्या विचारबिना बैठना बोलना लिखनाऽऽदिकभी ठीक नहिंहोता किन्तु जितना जितना विचार उदय होताहै उतना उतना पापोंका मूल 'अज्ञता' अज्ञान नष्ट होजाताहै ॥

सांसारिक सर्वकार्यभी विचारकरहि सिद्धहोतेहैं और मोक्ष के समाधिपर्यंत सर्वसाधनभी विचारसेंहि सिद्धहोतेहैं तातें बुद्धिमान् विचारकूं कबीनहिं छोडे क्युंकि विचारकरहि साधनोंके क्रम सें समाधिअवस्थामें आत्मप्रत्यक्ष होताहै ॥

पूर्वपक्षी—सर्वसंभ्रमसंशान्त्यै परमायफलायच ।
ब्रह्मविश्रांतिपर्य्यंतो विचारोऽस्तुतवानघ ॥

अर्थ—हेनिष्पाप श्रीराम सर्वभ्रमोंको अत्यन्त नाश करने के लिये और परमफल अर्थात् मोक्षकेलिये और ब्रह्ममें विश्रांति पर्य्यन्त तुझको विचारहि करने योग्यहै ॥

सिद्धान्ती—१ इस श्लोकका सर्गांक श्लोकांक तुमने क्युं नहिं लिखा ॥

२ विद्यमानताअर्थमें असधातुके अस्तुपदका करने योग्य है, यिह मिथ्या अर्थ क्युं लिखा ॥

३ भक्त प्रह्लादजीको श्रीविष्णुके वरदानका यिहश्लोकहै इसमें 'हेअनघ' हेनिष्पाप ऐसा प्रह्लादका संबोधन श्रीविष्णुजीने कियाहै तो 'हेनिष्पाप श्रीराम' ऐसा मिथ्याअर्थ तुमने सर्गांक श्लोकांक नहिं लिखनेसें विप्रलिप्साकर क्युं लिखा क्या आत्मदर्शी महात्माके ऐसे लेख होतेहैं क्या ऐसे विद्वानोंके लेखसें योग निरपेक्ष सांख्यतें आत्मप्रत्यक्ष सिद्ध होसक्ताहै । हेमित्र अतिखेद है कि वेदध्यङ्अथर्वणआदि आत्मविद्याके आचार्य कहांगये जिनाने इन्द्रसें शिरःछेदनआदि करवाय लिया परन्तु सत्यका त्याग नहिंकिया ॥

अब श्लोकके संक्षिप्त प्रसंगकूं मैं लिखताहुं देखिये--

श्रीभगवानुवाच

वरंगुणनिधेदैत्य कुलचूडामहामणे ।
गृहाणाभिमतंभूयो जन्मदुःखोपशान्तये ॥

उ० प्र० ५ ॥ सर्ग ३४ ॥ १ ॥

प्रह्लादउवाच

सर्वसंकल्पफलद सर्वलोकान्तरस्थित ।
यदुदारतमंवेत्सि तदेवादिशमेविभो ॥

स० ३४ ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

सर्वसंभ्रमसंशान्त्यै परमायफलायच ।

ब्रह्मविश्रान्तिपर्य्यन्तो विचारोऽस्तुतवानघ ॥

स० ३४ ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीभगवान् काहितेभै—हेदैत्यकुलके शिरोरत्न हेगुण निधे प्रह्लाद पुनर्जन्मदुःखकी शांतिलिये वाञ्छितवरकूं ले अर्थात् मांग ॥ १ ॥

प्रह्लाद काहितेभै—हेसर्वसंकल्पोंके फलदातः हेसर्वलोकोंके अंतरस्थित हेविभो विष्णो आप जिसकूं अत्यन्त महाश्रेष्ठ जानते हो तिसवरकूंहि मुझप्रति आज्ञादीजिये ॥ २ ॥

श्रीभगवान्०—हेनिष्पाप प्रह्लाद सर्वभ्रमोंके निवारणलिये और परमफल मोक्षलिये ब्रह्मविश्रान्तिपर्य्यन्त विचार तुझको हो ॥ ३ ॥

हेपाठक ऐसा वरदान देकर श्रीभगवद्विष्णुजी अंतर्द्धान हुए फिर विचारकर्तेकर्ते प्रह्लादकोजो ब्रह्मविश्रान्ति प्राप्तहुई सो कैसीथी सुनिये—

इतिसंचिन्तयन्नेव प्रह्लादः परवीरहा ।
निर्विकल्पपरानन्द समाधिंसमुपाययौ ॥

स ३७ ॥ १ ॥

निर्विकल्पसमाधिस्थ श्चित्रार्पितइवाचलः ।
शैलादिवसमुत्कीर्णो बभौस्वपदमास्थितः ॥

स० ३७ ॥ २ ॥

तथानुतिष्ठतस्तस्य कालोबहुतरोययौ ।
स्वगृहेभुवनस्थस्य मेरोरिवसुरद्विषः ॥

स० ३७ ॥ ३ ॥

बोधितोप्यसुराधीशै र्नाबुध्यतमहामतिः ।
अकालेबहुसेकोपि बीजकोशादिवांकुरः ॥

स० ३७ ॥ ४ ॥

अर्थ—ऐसे चिंतन कर्ताहुआ शत्रुशूरोंका नाशक प्रह्लाद निर्विकल्प परमानन्द समाधिकूं प्राप्तहुआ ॥ १ ॥

निर्विकल्पसमाधिमें स्थित चित्रमें लिखेकीन्यांई पर्वततें उकरेकीन्यांई अर्थात् पाषाणकी तसबीरवत् निश्चलहुआ प्रह्लाद आत्मपदकूं आरूढहोताभिया ॥ २ ॥

भुवनके मध्यस्थित सुमेरुपर्वतकी न्यांई स्वगृहमें तैसे स्थितहुए तिसदैत्य प्रह्लादको अति बहुतकाल व्यतीत हुआ ॥३॥

दैत्यपतियोंसें बोधित कियाभी महामति प्रह्लाद योगनिद्रासें नहिं जागता भिया जैसे असमयमें बहुतसेचन कियाभी बीजपुट तें अंकुर बोधित नहिंहोता ॥ ४ ॥

हेपाठक यिह निर्विकल्पसमाधिरूप ब्रह्मविश्रांतिहै सो विचारद्वारा भक्त प्रह्लादको प्राप्तहुई ब्रह्मकी बातां करणीआं वा ग्रन्थ पढनेहि ब्रह्मविश्रांति नहिं ॥

पूर्वपक्षी—सर्वभ्रमोंकी शांतिका अर परमफलमोक्षका

ब्रह्मसाक्षात्काराहि एकसाधन श्रुतिमें किहोहै याहेतुसें सर्वभ्रमोंकी शांतिलिये अर परममोक्षलिये ब्रह्मसाक्षात्कारपर्यंत विचार तुझको हो ऐसा कहना चाहियेथा श्रीविष्णुजीने सर्वभ्रमोंकी शांतिलिये अर मोक्षलिये विचारद्वारा ब्रह्मविश्रांति क्युं कही ॥

सिद्धान्ती—अतींद्रियपदार्थोंका प्रत्यक्ष अष्टमांगसमाधि जन्य सम्प्रज्ञातसमाधिरूप हि होताहै यिह नियमहै इसहेतुसें अतींद्रियब्रह्ममें सम्प्रज्ञातसमाधिरूप विश्रांति ब्रह्मसाक्षात्काररूप हि होवेहै इस अर्थमें औरभी स्पष्टप्रमाणोंकूं लिखुंगा इससें ब्रह्म-विश्रांतिकथनका अर ब्रह्मसाक्षात्कारकथनका एकहि अर्थहै देखिये तुमारे कथनकिये प्रमाणोंमेंभी ब्रह्मविश्रांतिपर्यंत विचार अर्थात् विचारद्वारा समाधिरूप विश्रांतिहि सर्वभ्रमोंकी शांतिका अर परमफलमोक्षका साधन स्पष्टहै इससें विचाररूपसांख्यका अर समाधिरूपयोगका क्रमसमुच्चय हि उक्त भगवद्वाक्यसें सिद्धहै हेभ्रातः अब कहियेकि सुरेश्वरस्वामीजीके मतकूं तथा तुमारे मत कूं और अप्पयदीक्षितजीके कथनकूं समीचीन जाने या श्रीभगवद्विष्णुनारायणके वाक्यकूं समीचीन जाने ॥

पूर्वपक्षी—बलिवत्प्रविवेकेन नित्योहमितिनिश्चयात् ।
पदमासादयाद्वैतं पौरुषेणैवराघव ॥

स० २९ ॥ ४० ॥

पदार्थ—हेराम बलिकी न्यांई अतिविवेककर 'मैंनित्यहुं' ऐसे निश्चयसें पुरुषप्रयत्नकराहि अद्वैतपदकूं प्राप्तहो देखो यहां बलिकी न्यांई विवेककर अद्वैतपदकी प्राप्ति कहीहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः बलिको विचारकर नित्य आत्माके 'निश्चयहुए' संशयरहित परोक्षज्ञानहुए 'पुरुषप्रयत्नकर' धारणा क्रमसें समाधिअवस्था प्राप्तहुई अथवा नहिं प्राप्तहुई इनमें प्रथमपक्षकहो तो इसतुमारे कथनाकिये प्रमाणोंसेंभी विचाररूप सांख्यका अर योगका क्रमसमुच्चयाहि सिद्धहुआ योगनिरपेक्ष सांख्यसें आत्मसाक्षात्कार सिद्धनहुआ ॥

यदि द्वितीयपक्ष कहो तो आपका कथन असत्यहिहै क्युंकि जिसरत्नजडित वातायनमें स्थितहुए बलिको गुरुशुक्रजी एकहि श्लोक उपदेशकर्के आकाशमार्गसें चलेगै तब उसी वातायनमें स्थितहुएबलिको विचार कर्तेकर्ते दृढसमाधिअवस्था प्राप्तहुई समाधिअवस्थामें परमात्मपदका प्रत्यक्षहुआ यिह वृत्तांत वासिष्ठ के उपशमप्रकरणमें प्रसिद्धहिहै देखो—

इतिसंचिन्तयन्नेव बलिःपरमकोविदः ॥

स० २७ ॥ ३१ ॥

ओंकारादर्द्धमात्रार्थं भावयन्मौनमास्थितः ।
संशान्तसर्वसंकल्पः प्रशान्तकलनागणः ॥

॥३२॥

बभूवावातदीपाभो बलिःप्राप्तमहापदः ॥
उपशान्तमनास्तत्र रत्नवातायनेबालिः ॥
अवसद्बहुकालंस समुत्कीर्णइवोपले ॥

स० २७ ॥ ३४ ॥

अर्थ—*ऐसे सम्यक् चिन्तनकर्ता परमपण्डित बलि ओंकारतें मात्रात्रयके अर्थकूं त्यागकर तुरीयअर्द्धमात्राका अर्थ आत्माकूं धारणकर्ताहुआ सर्वसंकल्पोंसें कलनागणसें रहितहुआ मुनियोंके कर्म 'मौनकूं' समाधिकूं आरूढ होताभिया ॥३१॥३२॥ महापदकूं प्राप्तहुआ बलि अवातदेशमें दीपकवत् निश्चलचित्त होताभिया। पाषाणकी मूर्तिवत्‌निश्चलहुआ बलि तिसरत्नजडित वातायनमें बहुकाल समाहितहुआ रहिताभिया ॥ ३४ ॥

पुनः बलिके अनुचर, मन्त्री, सेनापति, बांधव, सुहृद्, आदिक तिस बलिके गृहपर चडकर--

ध्यानमौनसमाधिस्थं चित्रार्पितमिवाचलम्।
नमत्किरीटावलयोददृशुर्बलिमादृताः ॥

स० २८ ॥ ७ ॥

अर्थ--शिरसें प्रणामकरणेसें †निमेहुए मुकुटोंकी पंक्तिआं वाले वो मंत्रीआदिक चित्रमेंलिखी मूर्तिकीन्यांई निश्चल ध्याना-भ्याससें मुनिकर्म समाधिमेंस्थित बलिकूं देखतेभे ॥ ७ ॥

तिस बलिकूं समाधिस्थ देखकर सुहृद्‌जन विषादकूं प्राप्त हुए उदासीनलोक विस्मयकूं तत्ववेत्ता आनंदकूं और केई अल्प मतिमान् भयकूं प्राप्तहुए फिर परस्पर कहितेभे हेदैत्या यिह क्या प्राप्तहुआ इसमें क्या कर्तव्यहै ऐसे विचारककें वो मन्त्री जन गुरुशुक्रजीकूं चिन्तनकर्तेभे चिन्तनसें अनन्तर गुरुशुक्रजी दर्शन देतेभे ॥

---

* उक्त प्रकारसें † झुकेहुए

पूज्यमानोऽसुरगणै र्निविष्टोगुरुविष्टरे ॥
ददर्शध्यानमौनस्थं भार्गवोदानवेश्वरम् ॥

स० २८ ॥ ११ ॥

अर्थ—असुरगणोंसें पूजेहुए शुक्रजी गुरुयोग्यआसनउपरि स्थितहुए दानवेश्वर बलिजीकूं ध्यानद्वारा समाधिमेंस्थित देखतेभै बलिकूंसमाधिमेंस्थित देखकर विचारतेहुए शुक्रजी दैत्यसभाकूं यिह कहितेभै—

अतिमात्रामिदंदैत्याः स्वविचारणयैवयत् ।
सम्प्राप्तविमलावासः सिद्धोऽयं भगवान्बलिः ॥

स० २८ ॥ १४ ॥

अयंतदेवमेवेह तिष्टन्दानवसत्तमाः ।
स्वात्मानिस्थितिमाप्नोतु पदंपश्यत्वनामयम् ॥

स० २८ ॥ १५ ॥

श्रान्तोविश्राममायातः क्षीणचित्तभवभ्रमः ।
शान्तसंसारनीहारो वाचनीयोनदानवाः ॥

स० २८ ॥ १६ ॥

कुरुध्वंस्वामिकार्याणि सर्वेदानवनायकाः ।
बलिर्वर्षसहस्रेण समाधेर्बोधमेष्यति ॥

स० २८ ॥ १९ ॥

अर्थ—हेदैत्या ज्ञानकी सिद्धिवाला यिह बलिभगवान् अपने विचारसेंहि निर्मल ब्रह्मअधिष्ठानकूं जो प्राप्तहुआहै सो यिह निर्मल ब्रह्मकूं प्राप्तहोना अत्यन्त सुखमय विश्रांतिहै ॥१४॥

उससें यिह बलि ऐसेहि समाहित स्थितहुआ स्वात्मामें बहुकाल स्थितिकूं प्राप्तहोवे अर अनामय परमात्मपदकूं 'देखे' प्रत्यक्षकरे हेभ्रातः देखो बलिको विचारतें अनन्तर समाधि प्राप्त हुआ समाधिअवस्थामें अनामय परमात्मपदका प्रत्यक्षहुआ इससें विचाररूप सांख्यका अर योगका क्रमसमुच्चय हि आत्म साक्षात्कारका साधन सिद्धहुआ ॥ १५ ॥

फिर शुक्रजी कहा कि हेदानवा बलिके चित्तसें जन्मका हेतु भ्रम नष्टहुआहै अर भ्रांतिजन्यवासनारूप हिम शांतहुआहै संसारवृत्तिओंसें 'श्रांतहुआ' थकाहुआ बलि विश्रांतिकूं प्राप्त हुआहै इससें बलि सम्भाषनीय नहिंहै अर्थात् बलिकूं मत बुलाना ॥ १६ ॥

हेदानवनायका तुमसर्व स्वामीबलिके राज्यकार्योंकूं करो बलि वर्षबहुतोंसें समाधितें जागेगा ॥ १७ ॥

हेसाधो तुमारे कथनकरे प्रमाणमें दृष्टान्त दैत्यराजबलि कोभी विचारसें समाधिअवस्थामें आत्मप्रत्यक्ष हुआहै ऐसेविचार कूं कौन बुद्धिमान्पुरुष नहिंमानता किंतु वेदशास्त्रोंके सिद्धान्त के विज्ञातापुरुष ऐसे मानतेहिहैं कि निदिध्यासनकी परिपाका- वस्थारूप समाधिके अभ्याससें धर्ममेघसमाधिरूप ब्रह्मविश्रांति

पर्यंत विचार अवश्यं कराचाहिये बहुत क्या विचारबिना तो सांसारिककार्यभी कोई सिद्ध नहिंहोता तो सूक्ष्मतमआत्माकार वृत्तिरूप परोक्षज्ञान पुनः संशयनिवृत्तिपूर्वक परोक्षविज्ञानरूप वृत्ति पुनः निदिध्यासन समाधिआदिक अतिदुःसाध्यसाधन विचारबिना कैसेसिद्ध होसक्तेहैं इसीहेतुसें श्रीभगवद्विष्णुनारायण जीने प्रियभक्त प्रह्लादको सर्वभ्रमोंकी शांतिलिये अर परमफल मोक्षलिये विचारमात्रका वरदान नहिंदीया किन्तु मोक्षलिये ब्रह्मविश्रांतिपर्यंत विचारका अर्थात् विचारद्वारा ब्रह्मविश्रांतिका वरदान दीयाहै देखो—

सर्वसंभ्रमसंशान्त्यै परमायफलायच ।
ब्रह्मविश्रान्तिपर्यन्तो विचारोऽस्तुतवानघ ॥

उ० प्र० ५ ॥ सर्ग ३४ ॥ २ ॥

अर्थलिख चुकाहूं ॥

हेभ्रातः पूर्वले सनत्कुमार अत्रि वसिष्ठ शुक्र व्यास उद्दालक वीतहव्य शिखिध्वज चूडाला सुलभाऽऽदिक सर्व आत्म साक्षात्कारवाले योगयुक्तहि श्रवणमें आतेहैं और तुमारे कहे प्रमाणसेंभी भक्तप्रह्लादको विचारसें निर्विकल्प समाधिरूपब्रह्म विश्रांति प्राप्तहुई अर गुरुशुक्रजीके एकश्लोक उपदेशसें बलिको भी विचारसें दृढसमाधिअवस्था प्राप्तहुई परन्तु अबतो अनेक उपनिषद्मंत्र सहस्रों वेदान्तश्लोक सुनेजातेहैं घोकेजातेहैं सुनाए जातेहैं विचार कियेजातेहैं तदपि हेमित्र दैत्यराज बलिकी न्यांई

भी अब विचारसें समाधिअवस्थाकी प्राप्ति तो कहां प्रत्युत योग का समाधिका नाम सुनतेहि खंडनमंडनलिये मुकद्दमेबाजी प्राप्त होजातीहै इससें निश्चय होताहै कि प्रह्लाद बलि उद्दालक वीतहव्य शिखिध्वज लीला भगवत्पूज्यपाद श्रीवसिष्ट आदिकों के विचारसें आपका विचार अतिविलक्षणहिहै क्युंकि उनके विचारसेंतो निरतिशयसुखमय निर्विकल्पसमाधिअवस्थारूप ब्रह्म विश्रांति प्राप्तहुई और आपके विचारसें तो निरतिशय दुःखमय क्षिप्तावस्थारूप मुकद्दमेबाजी प्राप्तहुई ॥

पूर्वपक्षी—आत्मविद्याके मुख्यआचार्य ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर भगवद्वसिष्टजीभी क्या समाधि कर्तेरहेहैं ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र शरीरादि सर्वजगत्सें चित्तवृत्तिओंकूं रोककर एकपरमात्मामें चित्तकी निमग्नता हि समाधिहै सो वीतराग मुनिजनोंकाहि कर्तव्यहै इससें श्रीवसिष्टजी नित्यं समाधि कर्तेभे देखो—

प्रातः स्नानविधिंकृत्वा संपाद्यभ्रातृभिःपुनः ।
प्रहिताल्पपरीवारो वसिष्टसदनंययौ ॥

उ० प्र० ५ ॥ स० ३ ॥ ४ ॥

समाधिसंस्थमेकान्ते मुनिमात्मपरायणम् ।
दूरएवाननामासौ रामोविनतकन्धरः ॥

॥ ५ ॥

तंप्रणम्याङ्गणेतस्थु स्तस्मिंस्तेविनयान्विताः ।

यावत्तमस्समालूनं व्यक्तंदिङ्मुखमण्डलम् ॥

॥ ६ ॥

क्षणाद्वसिष्ठोभगवान् विररामसमाधितः ।
आचारेणोपचारेण जग्राहप्रणतंजनम् ॥

उप० प्र० ५ ॥ स० ३ ॥ ९ ॥

अर्थ—प्रातःकाल स्नानविधिकूं कर्के पुनः संध्यावंदनादि कूं समाप्तकर्के भ्राताओंसें प्रेरेहुए थोडेपरिवार सहित रामजी वसिष्टजीके गृहकूं जातेभे ॥ ४ ॥

वहां एकान्तमें आत्मपरायण समाधिमें सम्यक्स्थितहुए वसिष्टमुनिजीकूं ग्रीवाझुकाएहुए यिहरामजी दूरसेंहि प्रणामकर्तेभे ॥ ५ ॥

तिस वसिष्टजीकूं प्रणामकर्के वो विनययुक्त रामादिक गृहके तिस अंगनमें तबतक स्थितरहे जबतक तम नष्टहुआ अर दिशामण्डल प्रकाशितहुआ ॥ ६ ॥

अवसरसें भगवद्वसिष्टजी समाधितें निवृत्तहुए प्रणामकर्ते रामादिजनोंकूं विनयआदिआचारसें अर प्रियवचनादि *उपचार सें स्वीकार कर्तेभे ॥ ९ ॥

हेभ्रातः यदि कृतार्थतालिये विचारमात्रहि अपेक्षितहोता तो मुनिवरवसिष्टजी प्रतिदिन समाधिमेंस्थित क्युंहोते वेदान्त

---

* सेवा

शास्त्रकेकर्ता श्रीव्यासजीकेभी प्रपितामह आत्मविद्याके आदि आचार्य्य भगवद्वसिष्टजीको क्या तुमारेविचारसें न्यून विचाररहा कि जिससें वो वसिष्टजी प्रतिदिन समाधिस्थित होतेरहे ऐसे मत कहो ऐसे मत कहो नास्तिकताकीप्राप्ति होगी क्युंकि ईश्वरकी न्यांई सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंके प्रत्यक्षज्ञानमें समर्थ ऋतम्भराप्रज्ञावाले योगारूढ मुनिवर वासिष्टादिक अस्मदादिक आस्तिकजनोंसें परमपूज्यहैं ऐसे सर्वज्ञमुनिवरोंमें विचारसें न्यूनता कहनेतें नास्तिकता अवश्यं होतीहै और सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंके प्रत्यक्षज्ञानमें असमर्थ ऋतम्भराप्रज्ञासेंशून्य योग रहित योगजधर्माऽस्पृष्ट जो साधारण मनुष्यहैं सो यदि भगवद्वसिष्टादि मुनिवरोंमें न्यूनताकहैं तो वो साधारणमनुष्य विद्वत्पुरुषोंके हासास्पदभी होंगे—

पूर्वपक्षी—नास्त्यविद्येतिसंजाते निश्चयेशास्त्रयुक्तितः ।
गलत्यविद्यातापेन तुषारकणिकायथा ॥

उ० स० ३७ ॥ ४० ॥

अर्थ—शास्त्रकी युक्तियोंसें 'अविद्यानहिंहै' ऐसा निश्चय उत्पन्नहुए तेजसें हिमकणकी न्यांई अविद्या नष्ट होजातीहै ॥

सिद्धान्ती—३७वें सर्गके १८ श्लोकहैं इससें तुमारेलिखे ३७वें सर्गमें यिहश्लोक हिनहिंहै । अन्यत्र कहींहो तो हो तथापि इसश्लोकसेंभी तुमारा कोईअर्थ सिद्धनहिंहोता आप ऐसेऐसे श्लोकालिखकर व्यर्थहि समय खोतेहो क्युंकि शास्त्रकी युक्तियोंसें सत्यअसत्यवस्तुका निर्णय होताहै शास्त्रकी युक्तियोंसें सुखदुःख

के हेतु धर्मअधर्मका निश्चयहोवेहै शास्त्रकी युक्तियोंसें विराग उदयहोताहै शास्त्रकी युक्तियोंसें अभ्यासमें तत्परता होतीहै शास्त्र की युक्तियोंसेंहि चित्तका निरोधरूप जय होताहै देखो वासिष्टमें हि कहाहै—

नशक्यतेमनोजेतुं विनायुक्तिमानिन्दिताम् ।

उ० प्र० ५ ॥ स० ९२ ॥ ३४ ॥

अङ्कुशेनविनामत्तं यथादुष्टंमतङ्गजम् ।
अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगमएवच ॥

॥३५॥

वासनासंपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
एतास्तायुक्तयःपुष्टाः सन्तिचित्तजयेकिल ॥

॥ ३६ ॥

याभिस्तज्जीयतेक्षिप्रं धाराभिरिवभूरजः ।
सतीषुयुक्तिष्वेतासु हठान्नियमयान्तिये ॥

॥ ३७ ॥

चेतस्तेदीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्तितमोंजनैः ॥

स० ९२ ॥ ३८ ॥

अर्थ—निर्दोष युक्तिबिना मन नहिं जीतसकीता जैसे मत्तहुए दुष्टहस्तीकूं अंकुशबिना नहिं जीतसकीता सोयुक्ति यिह हैं—

अध्यात्मविद्याकीप्राप्ति, साधुसंगति, वासनांकात्याग, प्राणों केस्पंदका निरोध ॥

सोयिह चारयुक्तियां चित्तके जयलिये पुष्टहैं जलधारासें भूमिके रजकी न्यांई जिनयुक्तियोंसें सोचित्त शीघ्र जीतसकीताहै यिहयुक्तिएं होते जोपुरुष हठसें चित्तकूं निरुद्धकर्तेहैं वोपुरुष मानो दीपककूं त्यागके अंजनोंसें तमकूं नाशकर्तेहैं ॥ ३८ ॥

हेभ्रातः अभ्यासवैराग्यरूप युक्तिसें चित्तका निरोध होताहै युक्तिसें चित्तका निरोधहुए आत्मप्रत्यक्ष होताहै आत्म प्रत्यक्षहुए अविद्याका बाधहोवेहै देखिये भगवद्वसिष्टजी स्पष्ट कहितेहैं—

**संवित्तत्वेकृतध्यानो यदितिष्ठसिचानघ ।**
**तद्यत्नेनाधिकेनोच्चै रासादयसितत्पदम् ॥**

उ० प्र० ५ ॥ स० ९२ ॥ ६ ॥

अर्थ—चैतन्य आत्मतत्त्वमें ध्यानकर यदि स्थित होवेंगा तो हेनिष्पाप रामजी तिसध्यानमें अधिकयत्नसें उच्चआत्मपदकूं 'प्राप्तहोवेंगा' साक्षात्करेंगा अर्थात् यदिध्यानसें स्थित नहिंहोवेंगा तोध्यानके अधिकयत्नका अभावहोनेसें आत्मपदकूं नहिं प्राप्त होवेंगा ॥ ६ ॥

पूर्वपक्षी—**विचारोत्थात्मविज्ञानं ज्ञानमङ्गविदुर्बुधाः ।**

स० ९३ ॥ २१ ॥

अर्थ—हेप्रियरामजी विचारसें उत्पन्नहुए विज्ञानकूं तत्त्वदर्शीपुरुष ज्ञान जानतेहैं ॥

सिद्धान्ती—१ हेमित्र कर्मयोग, विचाररूप सांख्ययोग, ध्यानयोग, इन साधनत्रयका क्रमसमुच्चय आत्मसाक्षात्कारका साधनहै यिह जब अनेक प्रमाणोंसें सिद्धहोचुकाहै अर वक्ष्यमाण नानायुक्तियोंसें सिद्धहै तो फिर ऐसे श्लोककथनकी योग्यताभी तुमारे नहिंहै ॥

२ साक्षात्कार, ईक्षण, अवलोकन, दर्शन, प्रत्यक्ष, इनशब्दों की न्यांई विज्ञानशब्दका अर्थ शब्दस्तोमआदि कोषग्रन्थोंमें अपरोक्षज्ञान नहिंकहा किन्तु बोध, ज्ञान, ज्ञप्ति, वित्ति, संवित्ति, मति, इनशब्दोंकी न्यांई विज्ञानशब्दका अर्थ ज्ञानकहाहै इसीहेतुसें प्रकरणानुसारी कहीं विज्ञानशब्दका अर्थ अपरोक्षज्ञान कियाजाताहै और बहुतजगें तो विज्ञानशब्दका अर्थ परोक्ष ज्ञान हि होताहै देखो आत्मपुराणके अष्टमाध्यायमें ४८२श्लोककी टीकामेंभी कहाहै ॥

## एतेनपरोक्षविज्ञानरूपः समाधिरङ्गमितिसूचितम् ॥

अर्थ—एतेन कहिये ब्रह्मका प्रत्यक्षज्ञानरूप समाधि कहिनेसें परोक्षविज्ञानरूप समाधि अष्टमांगहै ऐसे सूचनकिया जानना ॥

वि कहिये विशेष अर्थात् श्रवण मननरूप 'सांख्यसें' विचार सें संशयरहित जोज्ञान सो विज्ञान कहियेहै ऐसे विज्ञानशब्दकी

व्युत्पत्तिसें कोषप्रमाणसें अर उक्तउदाहरणसें विज्ञानशब्दका बहुतजगे परोक्षज्ञान अर्थ होनेसें उक्तवासिष्ठ श्लोकार्द्धका यिह अर्थहै सुनिये--

विचारसें उत्पन्नहुए आत्माके 'विज्ञानकूं' संशयरहित परोक्षज्ञानकूं तत्त्वदर्शीपुरुष ज्ञान जानतेहैं अर्थात् संशयसहित जो ज्ञानहै वो समीचीन नहिं ॥

२ यदि आप यहां विज्ञानशब्दका अपरोक्षज्ञानहि अर्थ हठसें करोगे तो ध्यानयोगद्वाराहि वो अर्थ करनाहोगा अर्थात् प्रह्लादबलिआदिकोंकीन्यांई विचारसें ध्यानयोगद्वारा उत्पन्नहुए आत्माके अपरोक्षज्ञानकूं ज्ञानजानतेहैं ऐसा अर्थ करणाहोगा क्युंकि कर्मयोग, विचाररूप सांख्ययोग, ध्यानयोग, इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय आत्मप्रत्यक्षका साधनहै यिह सिद्ध होचुकाहै यदि विचारसें ध्यानयोगबिनाभी आत्मसाक्षात्कार मानोगे तो उक्त षट्दोषोंकी प्राप्तिहोगी ॥

पूर्वपक्षी—अश्नन्गच्छन्स्वपंस्तिष्ठन्नितिराघवचेतसा। सर्वत्रप्रज्ञयातज्ज्ञः प्रत्यहंप्रविचारयेत् ॥

प्र० ५ ॥ सर्ग ८१ ॥ १७ ॥

अर्थ—ऐसे हेराघव भोजनकर्ता गमनकर्ताहुआ शयनकर्ता स्थितहुआ सर्वत्रविवेकीपुरुष शुद्धचित्तसें सूक्ष्मबुद्धिसें नित्य विचारकरे देखो यहां नित्यविचार करणा कहाहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः यिहतो मैंभी विस्तारसें कहैचुकाहुं

कि विचारबिना कोईकार्य सिद्ध नहिंहोता इसीसें कहाहै—

गच्छतस्तिष्ठतोवापि जाग्रतःस्वपतोपिवा ।
नविचारपरंचेतो यस्यासौमृतउच्यते ॥

अर्थ—चलताहै वा स्थितहै जागताहै वा सोताहै ऐसे जिस मनुष्यका चित्त विचारपरायण नहिंहै सो मृत कहियेहै पुनः हेभ्रातः उक्तसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय आत्मसाक्षात्कारका साधन सिद्ध होचुकाहै इससेंभी चित्तशुद्धिलिये कर्मयोग करके आत्माके सामान्यरूपसें ज्ञानलिये अर संशयनिवृत्तिलिये सांख्य योग अर्थात् श्रवणमननरूप विचार अवश्यं कराचाहिये ॥

पूर्वपक्षी—अथातोब्रह्मजिज्ञासा इस वेदान्तशास्त्रके आदिसूत्रमें श्रीवेदव्यासजीनेंभी ब्रह्मज्ञानके अर्थ वेदान्तविचारही विधान कियाहै ॥

सिद्धान्ती—औरप्रमाणोंका अर्थ तो आपने लिखा परन्तु इस सूत्रके अर्थलिखनेसें आपके हस्त संकुचित क्युं हुए ॥

सूत्रका अर्थ यिहहै—अथकहिये साधनचतुष्टयसम्पत्तिसें अनन्तर ‘अतः’ साधनचतुष्टयसम्पन्न अधिकारीको ब्रह्मविचार करा चाहिये अर्थात् साधनचतुष्टयकी सम्पत्तिविना श्रवणमनन रूप ब्रह्मविचारका अधिकार हि नहिंहै सो साधनचतुष्टय यिह हैं—

१ विवेक, २ वैराग्य, शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति

तितिक्षा, यिहषट् ३ सम्पत्, ४ मुमुक्षुता, इनसाधनचतुष्टयमें शम, दम, समाधानादिकभीहैं इससें शम, दम, समाधानादिका विना वेदान्तश्रवणके अधिकारकाभी उक्तसूत्रमें निषेधकराहै हे मित्र आपलिखतेहो कि इसआदिसूत्रमें वेदान्तविचारहि विधान कियाहै सो यहां 'ही' कौनसें पदका अर्थ होसक्ताहै अर्थात् सूत्रमें एवपद तो है नहिं कि जिसका ही अर्थ करसकें इससें सूत्रके पदोंकी उपेक्षाकर्के हठसें चित्तचाहा अर्थकर्तेहो ऐसेकरणा क्याधर्मरूपहै हेभ्रातः योग्यबुद्धिमानोंको अतिखेद होताहै कि आप ऐसेऐसे अर्थलिखकर जगत्में भ्रमकूं क्युं विस्तारितेहो हेभ्रातः विचारिये कि एकसूत्रमें समग्रप्रक्रियाका निरूपण नहिंहो सक्ता इसीहेतुसें उक्तसूत्रमें साधनचतुष्टयसम्पन्न को श्रवणमनन रूप ब्रह्मविचारका विधानकर्के क्रमसेंप्राप्त

## अपिसंराधनेप्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥

इससूत्रमें अर इससूत्रके भाष्यमें योगीजनोंको ध्यानयोगावस्थामें हि आत्मसाक्षात्कारका निरूपण कियाहै और प्रबल प्रमाणसें भाष्यकारोंने आत्माका योगारमा विशेषण कहाहै ॥

पूर्वपक्षी—महाभारतमें योगसें सांख्यमार्गको श्रेष्ठ कथन कियाहै तथाहि—

**सांख्ययोगौतुयावुक्तौ मुनिभिःसमदर्शिभिः ।**
**मार्गौतावप्युभावेतौ संश्रितौनचसंश्रुतौ ॥**

पर्व १२। अ० १९६ ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मदर्शीमुनियोंनें जो सांख्य अर योग कथनकिये हैं वहदोनोंही मार्ग मुमुक्षुपुरुषोंने आश्रयण कियेहैं तिन दोनोंमें सांख्यमार्गमें जपादि क्रियाका विधान नहीं ॥

सिद्धान्ती—१ हेमित्र इसआपके उक्तश्लोकमें तो किसीकी श्रेष्ठताका बोधक कोईपद नहिंहै इससें आप असत्यकथनकर्ते लज्जा नहिंकर्ते ॥

२ आपने जो लिखाहै कि सांख्यमार्गमें जपादिक्रियाका विधाननहिं सोभी असत्यहिहै अर आपनेजो इसश्लोकका अर्थ लिखा सोभी असत्यहि लिखा देखिये इसश्लोककी नीलकण्ठी टीका—

द्वयोरपिमार्गयोर्जपस्य आराद्दुपकारित्वेन अपेक्षां साक्षात्करोत्पत्तावनपेक्षांचाह सांख्येति संश्रितौ जपमितिशेषः ॥

अर्थ—जपको चित्तशुद्धिआदिद्वारा उपकारी होनेसें दोनों मार्गोंमें जपकी अपेक्षा पुनः साक्षात्कारकी उत्पत्तिहुए अनपेक्षा इसश्लोंकमें कहेहैं संश्रितौपदकेसाथ जप इसपदका अध्याहारहै इससें श्लोकका अर्थ यिहहै ॥

समदर्शीमुनियोंने जो सांख्ययोग कथनकरेहैं वो दोनों यिहमार्ग जपकूं आश्रयकियेहैं अर्थात् जपके आश्रितहैं क्युंकि जपादिसत्कर्मोंविना चित्तशुद्धि नहिंहोनेसें अर पुण्योंके पुंज उदय

नहिंहोनेसें सांख्ययोग सिद्ध नहिंहोते इसीहेतुसें श्रीशंकराचार्य्यों नेंभी विवेकचूडामणि वेदान्तग्रन्थमें कहाहै—

मुक्तिर्नोशतजन्मकोटिसुकृतैः पुण्यैर्विनालभ्यते ॥

अर्थ—बहुत जन्मोंमें 'कोटि' असंख्यात किये पुण्योंसें विना मुक्ति नहिंमिलसक्ती ॥

श्रीभगवद्गीतामेंभी कहाहै—

कर्मनेवहिसंसिद्धि मास्थिताजनकादयः ।

अ० ३ ॥ २० ॥

संन्यासःकर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तुकर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥

अ० ५ ॥ २ ॥

अर्थ—जनकादिक विद्वान् कर्मकर्के हि ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त हुएहैं ॥ २० ॥

संन्यास अर कर्मयोग यिहदोनों मोक्षके साधनहैं तिन दोनोंमें कर्मसंन्याससें कर्मयोग श्रेष्ठहै ॥ २ ॥

यजुर्वेदकी बृहदारण्यकउपनिषद्रूप मुख्यवेदान्तग्रन्थमें भी यज्ञादिकर्मोंका निरूपण कियाहै देखो—

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ॥

अ० ६ ॥ ब्रा० ४ ॥ २२ ॥

अर्थ—असुरोंकीन्यांई देवताऽऽदिकोंके द्रोहलिये जो तप करे सो हानिकर होनेसें नाशकतपहै और जो द्रोहसेंरहित कल्याणलिये तपकरें सो अनाशकतपहै वेदपाठकर यज्ञकर दान कर अनाशकतपकर 'ब्राह्मण' मुमुक्षुजन तिसप्रकृतआत्माकूं जाननेकी इच्छाकर्तेहैं अर्थात् वेदपाठ यज्ञ दान तपआदि सत्कर्मों का फल आत्मजिज्ञासाहै यिहभी विदितरहै कि यज्ञोंमें जपयज्ञ श्रेष्ठहै यिह गीतामेंभी कहाहै—

यज्ञानांजपयज्ञोऽस्मि ॥

अ० १० ॥ २५ ॥

यज्ञोंमें जपयज्ञ मैंहुं अर्थात् जपयज्ञ श्रेष्ठहै मनुस्मृतिमेंभी देखिये—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टोदशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रोमानसःस्मृतः ॥

अ० २ ॥ ८५ ॥

येपाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वेतेजपयज्ञस्य कलांनार्हन्तिषोडषीम् ॥

॥ ८६ ॥

अर्थ—विधानकिये दर्शपूर्णमासादियज्ञसें जपयज्ञ दशगुणा श्रेष्ठहै अर्थात् दशगुण अधिकफलका हेतुहै उक्तयज्ञोंसें उपांशुजप सौगुण अधिक फलका हेतुहै मानसजप सहस्रगुणअधिकफलवालाहै अमावस्याके यज्ञका नाम दर्शहै पूर्णमाके यज्ञकानाम पौर्णमासहै

समीपस्थ मनुष्यभी जिसका श्रवण नहिंकरसके ऐसे जपकूं उपांशु जप कहितेहैं ॥ ८५ ॥

दर्शपौर्णमासादियज्ञों सहित जो चारपाकयज्ञहैं वो सर्वयज्ञ जपयज्ञके षोडशोहिसे केभी योग्यनहिं अर्थात् उनसर्वयज्ञोंका जप यज्ञसें सोलवांहिसाभी फल नहिंहोता ॥

विश्वदेवतार्थ होम, बलिकर्म, श्राद्ध, अतिथिभोजन, यिह चार पाकयज्ञहैं ॥

वेदान्तग्रन्थ जीवन्मुक्तिविवेकमैंभी स्मृतिप्रमाण कहाहै देखिये—

भिक्षाटनंजपःशौचं स्नानंध्यानंसुरार्चनम् ।
कर्तव्यानिषडेतानि सर्वथानृपदण्डवत ॥

अर्थ—भिक्षाटन, जप, शौच, स्नान, ध्यान, देवार्चन, यिहषट्कर्म संन्यासीने राजदण्डकीन्यांई सर्वप्रकारसें करणे योग्यहैं ॥

देखो गुरुग्रन्थसाहिबमैंभी जपका विधान कराहै ॥

हरि हरि नाम जपो मेरी जिंदडिये की जापे सा आवे कि ना आवे राम ॥

हेमित्र देखिये उक्तउपनिषद्मंत्र श्रीभगवद्गीता विवेक-चूडामणि जीवन्मुक्तिविवेकादि वेदान्तग्रन्थोंमें तो विहित जप यज्ञादि क्रियाका निरूपण कियाहिहै तो इनसर्वसें विरुद्ध कथन कर्ते आप विद्वानोंसें कैसे माननीय होसक्तेहो तथा गुरुग्रन्थ

साहिबसें विरुद्ध कथनकर्ते आप कैसे माननीय होसक्तेहो हेभ्रातः यद्यपि आत्मसाक्षात्कारके उदयहुए जपादिकोंकी अपेक्षा नहिं तथापि जपादि सत्कर्मोंसें चित्तशुद्धिहुएतें अनंतर हि श्रवणमनन रूप सांख्यमार्गसें आत्माका सामान्यरूपसें ज्ञानहोताहै तदनंतर निदिध्यासनरूप योगमार्गसेंहि आत्माका साक्षात्कार होवेहै जैसे शिवकांचीसें प्रचलितयात्रीको प्रथम स्थलमार्गसें फिर जलमार्गसें रामेश्वरमहादेवका दर्शन होताहै ॥

पूर्वपक्षी—महाभारतकी नीलकण्ठीटीकामें कहाहै—

सांख्ययोगपक्षयोर्मध्ये सांख्यमेवश्रेय इत्याह अथेति ॥

अर्थ—सांख्य अर योग इनदोनोंपक्षोंमें सांख्यहि श्रेष्ठहै यिहकहितेहैं अथ इसश्लोकसें--

अथज्ञानप्लवंधीरो गृहीत्वाशान्तिमात्मनः ।
उन्मज्जंश्चनिमज्जंश्च ज्ञानमेवाभिसंश्रयेत् ॥

अर्थ—विवेकादि साधनसम्पन्नपुरुष ज्ञानाभ्यासरूप नाव को ग्रहणकर्के संसारसागरमें गोतेखाताहुआ ज्ञानाभ्यासकोहि सम्यक् आश्रयणकरे ॥

सिद्धान्ती—१ हेभ्रातः देखो—

ये कर्मसांख्ययोर्निष्णाता स्तेध्यानेनपश्यन्ति

**अन्येसाख्येनयोगेन ध्यानद्वारापश्यन्ति अन्येपुनः कर्मयोगेनैव सांख्यध्यानद्वारा पश्यन्तीति साधन त्रयस्यसमुच्चयो नतु विकल्पः ॥**

इसनीलकण्ठीटीकामें सांख्यसेंभी ध्यानयोगद्वाराहि आत्मसाक्षात्कार कहाहै अर कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग, इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय स्पष्ट कथनकराहै तो फिर आपको अन्य अर्थवाली नीलकण्ठीटीकालिखनेकी योग्यता क्या थी ॥

२ मूलश्लोकमें योगका वा सांख्यका वा श्रेष्ठताका बोधक कोईभी पद नहिंहै तो नीलकण्ठीमें योगसें सांख्यकूं श्रेष्ठ क्युं कहाहै यदि आप कहो कि मूलश्लोकमें ज्ञानकाहि आश्रयण कहाहै तो आत्मसाक्षात्कारलिये हि परम्परासें सांख्यहै अर आत्माके प्रत्यक्षज्ञानलिये हि ध्यानयोगहै इससें ध्यानयोगमेंभी ज्ञानकाहि आश्रयणहै योगकी पूर्वावस्थारूप निदिध्यासन अर अष्टमांगसमाधिभी परोक्षज्ञानरूपहै अर योग अपरोक्षज्ञानरूपहै यिह प्रबलप्रमाणोंसें सिद्ध किया जावेगा ॥

३ हेमित्र इसश्लोकका अंक अध्याय पर्व तुमने नहिं लिखा इससें जानाजावेहै कि इसश्लोककी टीका कोई न देखले, इस अभिप्रायसें आपने इसका अध्यायांक श्लोकांक नहिंलिखा किंतु अपनी इच्छाऽनुसारी अर्थ लिखाहै यिह पर्व १२ अध्याय २३८ का १ पहिला श्लोकहै अब इसश्लोककी नीलकंठीटीका लिखताहुं देखिये—

**शास्त्राचार्योपदेशजं परोक्षज्ञानरूपंप्लवं संसार समुद्रतरणसाधनं गृहीत्वा धीरोध्यानवान् आत्मनः शान्ति मोक्षहेतुं ज्ञानमेवाश्रयेत् ॥**

अर्थ—संसारसमुद्रतें तरणेका साधन शास्त्रसें अर गुरुके उपदेशसें जन्य परोक्षज्ञानरूप बेडकूं ग्रहणकर्के ध्यानीपुरुष मन की शान्तिरूप मोक्षहेतु ज्ञानकूं हि आश्रयणकरे अर्थात् शास्त्र विचारसें अर गुरूपदेशसें परोक्षज्ञानकूं सम्पादनकर्के ध्यानवान् हुआ पुरुष मोक्षकाहेतु मनकी 'शान्ति' समाधिरूप अपरोक्षज्ञान में 'निष्ठावाला' स्थितिवालाहोवे हेसाधो देखो आपके लिखे नील-कण्ठी प्रमाणमेंभी गुरूपदेशसें शास्त्रविचारसें अर्थात् श्रवणमनन रूप सांख्यसें परोक्षज्ञानहि कहाहै अर ध्यानवान्को अपरोक्षज्ञान में स्थितिकरणी कहीहै ॥

४ यदि श्रीपं० नीलकण्ठजी कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यान-योग, इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय स्पष्टपदोंसें आप लिखचुकेहैं तो फिर सांख्यमें निर्मूलश्रेष्ठता क्युं लिखतेहैं यदि कहो कि 'विचाररूपसांख्यविना आत्माविषयक ध्यानयोग नहिंहोसक्ता' इस तात्पर्यसें सांख्यमें श्रेष्ठता कहीहै तो हेसाधो इससें योग निरपेक्षसांख्यसें आत्मसाक्षात्कार सिद्ध नहिंहोसक्ता ॥

५ आश्चर्यहै आश्चर्यहै कि श्रुतिस्मृतिआदिकोंमें तो सांख्य सें ध्यानयोगकी श्रेष्ठता प्रसिद्धहिहै तो श्रुतिस्मृतिआदि वाक्यन कूं उल्लंघके आप क्युं कथन कर्तेहो देखिये विवेकचूडामणिमें भाष्य-

कारस्वामिके वाक्य—

श्रुतेः शतगुणंविद्यान्मननंमननादपि ।
निदिध्यासंलक्षगुण मनन्तंनिर्विकल्पकम् ॥

॥ ३६४ ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

देखिये हेप्रियपाठक यहां भाष्यकारोंने श्रवणमननरूप सांख्यसें लक्षगुण निदिध्यासन अर अनन्तगुण निर्विकल्पसमाधि कहनेसें श्रवणमननरूप सांख्यसें लक्षगुणश्रेष्ठ निदिध्यासनरूप ध्यानकूं अर अनन्तगुणश्रेष्ठ निर्विकल्पसमाधिकूं कहाहै अर साधनों की समाप्तिभी निर्विकल्पसमाधिमें करीहै फिर ऐसेहि श्रीपं० केशवानन्दजीनेभी ताकी व्याख्या करीहै सोभी लिखचुकाहुं ॥

अब भगवद्वाक्यभी सुनो—

तपस्विभ्योऽधिकोयोगी ज्ञानिभ्योपिमतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्माद्योगीभवार्जुन ॥

अ० ६ ॥ ४६ ॥

अर्थ—चांद्रायणादि तपकरणेवालोंसें योगी श्रेष्ठमानाहै अश्वमेध यज्ञादि कर्मकरणेवालोंसेंभी योगी श्रेष्ठमानाहै विचारजन्य परोक्षज्ञानवालोंसेंभी योगी श्रेष्ठ मानाहै 'तातें' सर्वसें योगी श्रेष्ठहोनेतें हेअर्जुन तूं योगीहो ॥

यजुर्वेदकी कठउपनिषद्का वाक्य सुनिये—

अप्रमत्तस्तदाभवति ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

अर्थात् योगावस्थामें प्रमादाभाव कहनेसें योगकी श्रेष्ठता प्रसिद्धहिहै और

नासमाहितः

इत्यादि उक्त श्रुतिस्मृति वाक्यजो 'समाधिविना' योग विना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहितेहैं वो उक्तअनेक प्रबल प्रमाणभी योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहनेसें आत्म साक्षात्कारलिये योगकी श्रेष्ठता अर्थात् कहितेहैं ॥

अब महाभारतमें श्रीव्यासजीका अर शुकका संवाद देखिये—

शुकउवाच ।

यस्माद्धर्मात्परोधर्मो विद्यतेनेहकश्चन ।
योविशिष्टश्चधर्मेभ्य स्तंभवान्प्रब्रवीतुमे ॥

प० १२ अ० २५० ॥ १ ॥

व्यासउवाच ।

मनसश्चेन्द्रियाणांचा प्यैकाग्र्यंपरमंतपः ।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः सधर्मःपरउच्यते ॥

प० १२ ॥ अ० २५० ॥ ४ ॥

अथ—आत्मसाक्षात्कारके प्रापकपरमधर्मकूं शुकजी पूछतेभै जिसधर्मतें 'पर' श्रेष्ठधर्म कोईनहिंहै जो धर्मोंतें अतिश्रेष्ठहै सो

मुझकूं आपकहो ॥ १ ॥

व्यासजी कहितेहैं—मनकी और इन्द्रियोंकी एकाग्रता अर्थात् इन्द्रियोंकी अर मनकी एकवस्तुमें स्थितिरूप समाधि परमतपहै सो सर्वधर्मोंतें अतिश्रेष्ठहै सोई परमधर्म कहियेहै ॥ ४ ॥

ऐसे हेभ्रातः योगकी श्रेष्ठताके बोधक भाष्यकारोंके भगवद्गीताके श्रुतिस्मृतिआदिकोंके वाक्यनसें विरुद्धवाक्य कैसे माननीय होसक्ताहै ॥

६—यदि मोक्षलिये सांख्यमें श्रेष्ठता होती तो महाभारतमें—

नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः ॥

पं० १२ ॥ अ० ३३१ ॥ ५२ ॥

अर्थ—योगविना परमगति नहिं प्राप्तहोसक्ती यिह क्युं कहिते ॥

पूर्वपक्षी—सिद्धान्तलेशके संग्रहकर्ता अप्पयदीक्षितजी लिखतेहैं कि सांख्यसें ब्रह्मसाक्षात्कार शीघ्र सिद्धहोताहै अर निर्गुणध्यानसें विलंबकर सिद्धहोताहै । सांख्यके अलाभहुए योगका अनुष्ठानकरणेयोग्यहै ऐसे इनवाक्यनकीभी व्यवस्थाकरी चाहिये ॥

सिद्धान्ती—हेपाठक वाक्यनकी प्रमाणता, प्रबलप्रमाणता अतिप्रबलप्रमाणताका लक्षण पूर्व लिखचुकाहुं उसका अब

स्मरण कीजिये फिर देखिये जोउपनिषद्वाक्य वेदान्तसूत्र ताका भाष्य भाष्यकीटीका न्यायसूत्र भगवद्गीता याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति, महाभारत, वासिष्ट, दक्षस्मृति, आत्मपुराणादिकोंके वाक्यरूप अतिप्रबलप्रमाण प्रबलप्रमाण मैं लिखचुकाहुं जिन प्रमाणोंमें ध्यानयोगसेंहि आत्मसाक्षात्कार कहाहै 'समाधिविना' योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै जैसे श्रीभाष्य-कारोंने---

निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ॥ नान्यथा ०

इत्यादि वाक्यनमें कहाहै ऐसे तिनअतिप्रबलप्रमाणोंसें अर प्रबलप्रमाणोंसें विरुद्धकथन मेराहो या तुमाराहो या अप्यय-दीक्षितका कथन 'अकिंचित्करहै' कुछ सिद्ध नहिंकरसक्ता ॥

अब और निर्णय करलीजिये कि विचाररूप सांख्य दुर्लभ नहिंहै क्युंकि स्वल्पबुद्धिमान्पुरुषभी श्रवणमननरूप विचारकूं संस्कृतग्रन्थद्वारा वा भाषाग्रन्थद्वारा करसकेहैं परन्तु मनोनिग्रह रूपयोग तो विद्वज्जनोंकोभी अत्यन्त दुर्लभहि निश्चितहै देखो श्रीकृष्णचन्द्रनेभी ऐसेहि गीतामें कहाहै ॥

असंशयंमहाबाहो मनोदुर्निग्रहंचलम् ।
अभ्यासेनतुकौन्तेय वैराग्येणचगृह्यते ॥
अ० ६ ॥ ३५ ॥

अर्थ--हेमहाबाहो कुन्तिपुत्र अर्जुन मन चंचलहै अति

कष्टसें 'निग्रह' निरोधहोनेयोग्यहै यिह 'असंशयहै' निश्चितहै सो अभ्याससें वैराग्यसें मनोनिग्रह करसकीताहै ॥

महाभारतमें--

सुस्थेयंक्षुरधारासु निशितासुमहीपते ।
धारणासुतुयोगस्य दुःस्थेयमकृतात्मभिः ॥

प० १२ ॥ अ० ३०० ॥ ५४ ॥

अर्थ--हेराजन् उस्तरोंकी तीक्षणधाराओंपर सुखसें स्थित होसकें तिससेंभी योगकी धारणामें अशिक्षितचित्तवालोंने स्थित होना कठिनहै ॥

वासिष्ठमेंभी श्रीरामने कहाहै—

अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि ।
अपिवह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः ॥

प्र०१ ॥ स० १६ ॥ २४ ॥

अर्थ--समुद्रके पान करलेनेसेंभी बडेभारी सुमेरुपर्वतके मूलसें उखाडनेतेंभी हेसाधो अग्निके भोजनकरलेनेसेंभी चित्तका निग्रहकरणा कठिनहै ॥

हेप्रियपाठक इसअर्थमें बहुतप्रमाण लिखनेकी आवश्यकता नहिंहै क्युंकि सर्व योग्यमनुष्य यिह जानतेहिहैं कि योग अत्यन्त दुर्लभहै हेमित्र अब विचारिये कि जिसअत्यन्तमूढबुद्धि मनुष्यको विचाररूप सांख्यभी दुर्लभहै वो अत्यन्तमूढबुद्धि मनुष्य क्या

योग सिद्धकरसक्ताहै जिसयोगकूं अधीतवेदअर्जुन श्रीकृष्णचन्द्र रामचन्द्रादिकभी दुर्लभहि कहितेहैं इससें 'सांख्यके अलाभहुए योग अनुष्ठान करणेयोग्यहै' यिह तुमाराकथन तो हासका हि आस्पदहै ॥

हेभ्रातः वेदोंके स्मृतिओंके महर्षियोंके श्रीशंकराचार्योंके वाक्यनकी व्यवस्था अवश्यं करणीयाहै और साधारणविद्वानोंके वाक्यनकी व्यवस्था अपेक्षित नहिंहोती ॥

पूर्वपक्षी—दोनोंमार्गोंकी वार्तामें कुशलपुरुष फलको नहिं पाता फल तो किसी एकसाधनके अनुष्ठानसेंही होगा ॥

सिद्धान्ती—फल तो श्रुतिस्मृतिविहित सर्वसाधनोंके अनुष्ठानसें होताहै यिह सत्यहै परंतु जिसकिसी विद्वान्सें निदिध्यासनादिसाधन न होसकें तो वो क्या अन्यथा निरूपण परायण होजावे हेमित्र यिह धर्मनहिं यिह साधुता नहिं किन्तु महापापमूल पक्षपातकूं त्यागकर युक्तिप्रमाणोंसें सिद्धार्थका डिंडिम बजाया चाहिये यिही सत्यरूप परमधर्मह यिही साधुताहै ॥

पूर्वपक्षी—बहुत आचार्योंके मतमें तो श्रवणमनन निदिध्यासन इनतीनोंका नाम सांख्यहै तथा विचारभी इनतीनोंको ही कहितेहैं और वार्तिककार सुरेश्वराचार्योंके मतमें श्रवण तथा मननकोही सांख्य या विचार कहाहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः 'बहुतआचार्योंके मतमें तो श्रवण

मनन निदिध्यासन इनतीनोंका नाम सांख्यहै तथा विचारभी इनतीनोंकोही कहितेहैं, इसतुमारे कथनसेंहि तुमारेसर्व पूर्वपक्ष खंडितहुए क्युंकि सुरेश्वराचार्यविना अन्यबहुतआचार्योंके मतमें श्रवणमनननिदिध्यासन इनतीनोंका नाम सांख्य तथा विचारहै यातें 'सांख्यसें' विचारसें आत्मसाक्षात्कार कहिनेसें अर्थात् 'श्रवणमनननिदिध्यासन' इनतीनोंसें आत्मसाक्षात्कार सिद्धहुआ निदिध्यासनरूप ध्यानयोगविना आत्मसाक्षात्कार सिद्ध न हुआ इसहेतुसें निष्कामकर्मानुष्ठानरूप कर्मयोग, श्रवणमननरूप सांख्ययोग, निदिध्यासनरूप ध्यानयोग, इनसाधनत्रयका क्रमसमुच्चय हि आत्मसाक्षात्कारका साधन उक्तअनेकप्रमाणोंसें तथा वक्ष्यमाण उपनिषदादि प्रमाणोंसें सिद्धहै ॥

पूर्वपक्षी—श्रवणमननरूप सांख्यसें अनन्तर ध्यानरूप निदिध्यासनकरणा किसउपनिषद्में कहाहै—

सिद्धान्ती—सुनिये बृहदारण्यक उपनिषद्मेंभी कहाहै—

**आत्मावा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥**

म० ४ ॥

अर्थ—श्रीमुनि याज्ञवल्क्यजी कहेहैं अरे मैत्रेयि आत्मा प्रत्यक्ष कराचाहिये कैसे आत्माप्रत्यक्षहोताहै याका उत्तर श्रुति भगवती कहितीहै श्रवण कियाचाहिये मननकराचाहिये तदनन्तर ध्यान कियाचाहिये देखो यहां श्रवणमननसें पश्चात् ध्यानरूप

निदिध्यासनकरणा कहाहै ॥

पूर्वपक्षी—सुरेश्वराचार्य निदिध्यासनपदका विज्ञान अर्थ लिखतेहैं तथा सर्वज्ञात्ममुनियोंनेभी निदिध्यासनपदका ज्ञानही अर्थ कहाहै ॥

सिद्धान्ती—आश्चर्यहै आश्चर्यहै कि सर्ववेदान्तग्रन्थोंमें तो विजातीयवृत्तिसें व्यवधानरहित सजातीयवृत्तियोंका प्रवाहरूप ध्यान हि निदिध्यासनपदका अर्थ लिखाहै इसीसें निदिध्यासन की परिपक्वावस्था हि समाधि कहीताहै तो सर्ववेदान्तग्रन्थोंसें विरुद्ध लेख सुरेश्वरस्वामीजीका तथा सर्वज्ञात्ममानिका कैसे माननीय होसक्ताहै देखो पंचदशीके प्रत्यक्तत्त्वविवेकमेंभी श्रवण मनन निदिध्सासनका लक्षण लिखाहै—

इत्थंवाक्यैस्तदर्थानु संधानंश्रवणंभवेत् ।
युक्त्यासंभावितत्वानु संधानंमननंतुतत् ॥

॥ ५३ ॥

ताभ्यानिर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसःस्थापितस्ययत् ।
एकतानत्वमेताद्धि निदिध्यासनमुच्यते ॥

॥ ५४ ॥

ध्यातृध्यानेपरित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम् ।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयते ॥

॥ ५५ ॥

अर्थ—ऐसे महावाक्यनद्वारा तिनमहावाक्यनके अर्थका चिन्तन श्रवणहै श्रवणकियेअर्थका जो युक्तिसें निश्चयज्ञान सो मनन है ॥ ५३ ॥

तिसश्रवणमननसें निश्चितकरे अर्थमें स्थितकिये चित्तका जो 'एकतानत्वहै' एकाकारवृत्तिओंका प्रवाहहै सो यिह निदिध्यासन कहियेहै ॥ ५४ ॥

ध्याताकूं अर ध्यानकूं छोडकर अर्थात् ध्याताध्यानकीभी प्रतीति नहिंरहै अभ्यासकेक्रमसें जब एकध्येयविषयक निवात दीपकवत् निश्चलचित्तहोवे तब समाधि कहियेहै ॥ ५५ ॥

इसी ५५ श्लोककी टीकामें पं० रामकृष्णजी लिखतेहैं देखो—

तस्यैव निदिध्यासनस्य परिपाकदशारूपं समाधिमाह ॥

अर्थ—तिसी निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप समाधिकूं कहितेहैं ॥

इसीप्रकार विचारसागरादिभाषाग्रन्थ और सर्वसंस्कृत ग्रन्थोंमेंभी विजातीयवृत्तिसें व्यवधानरहित सजातीयवृत्तियोंका प्रवाहरूप ध्यानहि निदिध्यासनपदका अर्थ कहाहै ॥

आत्मपुराणके सप्तमाध्यायमेंभी—

श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

इसमंत्रकी व्याख्यामें निदिध्यासनपदका ध्यानहि अर्थ प्रतिपादनकराहै देखो—

मननध्यानसंयुक्तं मनोऽत्वश्रुतिमानतः।
प्रत्यक्षंजनयेज्ज्ञान मानन्दात्मनिनिर्द्वये ॥

अ० ७॥ २७८॥

अर्थ—श्रुतिप्रमाणतें मनन अर ध्यानसेंसंयुक्त मन अद्वय आनन्दरूप आत्मामें प्रत्यक्षज्ञानकूं उत्पन्न करेहै ॥

बहुत क्या—'श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इस उपनिषद्मंत्रपर श्रीशंकराचार्योंकृत भाष्यभी लिखताहुं देखिये—

श्रोतव्यः पूर्णमाचार्य्यंत आगमतश्च पश्चान्मन्तव्यस्तर्कतः ॥ ततो निदिध्यासितव्यो निश्चयेन ध्यातव्यः॥ एवंह्यसौ दृष्टोभवति श्रवणमनननिदिध्यासनसाधनै र्निर्वर्तितैः ॥ यदैकत्त्वमेतान्युपगतानि तदा सम्यग्दर्शनं ब्रह्मैकत्वविषयं प्रसीदति नान्यथा श्रवणमात्रेण ॥

अर्थ—प्रथम आचार्यसें अर शास्त्रसें श्रवण कियाचाहिये पश्चात् युक्तियोंसें मनन कराचाहिये तिस श्रवणमननसेंअनन्तर निश्चयसें ध्यान कराचाहिये इसविधिसें कियहुए श्रवणमनन

निदिध्यासनरूप साधनोंसें प्रकृतआत्मा प्रत्यक्षहोवेहै जब यिह श्रवणमनननिदिध्यासन तीनों तुल्यताकूं प्राप्त होतेहैं अर्थात् जब यिह तीनों तुल्यअनुष्ठान कियेजातेहैं तब ब्रह्मकी एकताविषयक सम्यक्साक्षात्कार होताहै 'अन्यथा न' इनतीनोंके अनुष्ठानसें विना श्रवणमात्रसें ब्रह्मसाक्षात्कार नहिंहोता ॥

हेपाठक देखो यहां भाष्यमें श्रीशंकराचार्योंने स्पष्टपदसें निदिध्यासनका ध्यान हि अर्थ लिखाहै फिर निदिध्यासनकी ब्रह्मसाक्षात्कारके साधनोंमें गणति करीहै पुनः 'श्रवणमनन निदिध्यासन' इनतीनोंसाधनोंसें ब्रह्मसाक्षात्कार कहाहै फिर

## यदैकत्वमेतान्युपगतानि तदा सम्यग्दर्शनं नान्यथा ॥

यिह जब तीनों तुल्यअनुष्ठान कियेजातेहैं तब सम्यक् साक्षात्कारहोताहै अन्यथा नहिंहोता, इसवाक्यसें भाष्यकारोंने तीनोंके तुल्यअनुष्ठानसें ब्रह्मसाक्षात्कार कहाहै अन्यथा नहिंकहा तो उक्तमन्त्रपर आत्मपुराणकी व्याख्यासें विरुद्धकथन अर सुरेश्वराचार्यके तथा सर्वज्ञात्ममुनिकेभी परमगुरु श्रीशंकराचार्योंसें विरुद्धकथन सुरेश्वरस्वामीका तथा सर्वज्ञात्ममुनिका कैसे प्रमाण रूप होसक्ताहै किन्तु निजगुरोंसें विरुद्धकथन तो हासास्पद हि होवेहै ॥

पूर्वपक्षी—क्या तुमारे कथनसें सुरेश्वराचार्यका व्याख्यान

वा सर्वज्ञात्ममुनिका कथन अमाननीय होसक्ताहै ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः क्या आपके कथनसें आत्मपुराणके कर्ता श्रीशंकरानन्दस्वामीका व्याख्यान अमाननीय होसक्ताहै अर विश्वगुरु श्रीशंकराचार्योंका व्याख्यान क्या आपके कथनसें अमाननीय होसक्ताहै ऐसे कदापि नहिं कदापि नहिं होसक्ता और स्पष्टध्यान समाधियोगपदोंवाले जो अनेक श्रुतिस्मृतिरूप प्रमाण लिखचुकाहुं अर जो लिखूंगा वो क्या आपके कथनसें अमाननीय होसक्तेहैं ऐसे कदापि नहिं कदापि नहिंहोसक्ते ॥

अर्थ यिह—मेरेकथनसें तो सुरेश्वराचार्यका सर्वज्ञात्ममुनिका कथन अमाननीय नहिंहोसक्ता परन्तु उक्त वक्ष्यमाण प्रबल प्रमाणरूप श्रुतिस्मृतिवाक्यनसें तथा आत्मपुराणादिकोंके वाक्यनसें तथा परमगुरु भाष्यकारोंके वाक्यनसें विरुद्ध तो सुरेश्वरस्वामीका सर्वज्ञात्ममुनिका उल्लेख अमाननीय होसक्ताहै ॥

पूर्वपक्षी—तो उक्तमंत्रके—

## आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳसर्वंविदितम् ॥

अर्थ—अरेमैत्रेयि आत्माके दर्शनसें श्रवणसें मननसें विज्ञानसें यिह सर्वजगत् विज्ञातहोताहै, इसअनुवादमें निदिध्यासनका विज्ञानपदसें क्युं अनुवाद कियाहै ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र प्रथम मैं आपसैं पूछताहुं कि इसउक्त मंत्रके निदिध्यासनपदका आत्मपुराणमैंभी ध्यान हि अर्थ लिखा है अर पूज्यपादश्रीशंकाचार्योंनेभी ध्यानाहि अर्थ स्पष्टलिखाहै तो वो आत्मपुराणके कर्ताने अर भाष्यकारस्वामीने क्या इस अनुवादकूं देखा नहिंथा जो निदिध्यासनका ध्यान अर्थ लिखा ऐसे नहिं ऐसे नहिं किन्तु निदिध्यासनका ध्यान हि अर्थहै इससैं आत्मपुराणमें अर शांकरभाष्यमें निदिध्यासनपदका ध्यानहिअर्थ लिखाहै अनुवादमें तो निदिध्यासनकी परिपक्वावस्थाकी दृष्टिसैं विज्ञान कहाहै अर्थयिह निदिध्यासनकी परिपक्वावस्था हि 'योगहै' समाधिहै वोहि आत्मसाक्षात्कारहै इससैं निदिध्यासनकी परिपाकावस्था अर आत्मसाक्षात्कारकी एकार्थतादृष्टिसैं विज्ञान कहाहै यदि आप निदिध्यासनकूं ध्यानरूप अर्थात् योगकी पूर्वावस्थारूप नहिं मानोगे तो बहुतदोषोंकी प्राप्ति होगी सुनिये—

१—जो पञ्चदशीआदिक और विचारसागरादिक सर्व संस्कृत भाषा वेदान्तग्रन्थ विजातीयवृत्तिसैंरहित सजातीयवृत्तिओंका प्रवाह निदिध्यासनपदका अर्थ कहितेहैं अर निदिध्यासनकी परिपाकावस्था समाधि कहितेहैं तिनसर्व वेदान्तग्रन्थोंसैं विरोध होगा ॥

२—'निदिध्यासितव्यः' इसपदकी व्याख्यारूप उक्त आत्मपुराणके श्लोकसैं विरोधहोगा ॥

३—अस्मदादिकोंके अर सुरेश्वराचार्यके सर्वज्ञात्ममुनिके भी परमगुरु श्रीशंकराचार्योंकृत इसउक्तमंत्रके भाष्यसेंभी विरोध होगा ॥

४—जो 'समाधिविना' योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहितेहैं ऐसे उक्त श्रुति दक्षस्मृति आत्मपुराण शारीरकभाष्यकी टीकाऽऽदिक अनेक उक्त प्रमाणोंसें विरोधहोगा इससें विजातीय वृत्तिसेंरहित सजातीयवृत्तिओंका प्रवाह हि निदिध्यासनहै तिसी का नामांतर ध्यानहै ऐसे निदिध्यासनकी परिपाकावस्था हि एकाग्रवृत्तिरूप योगहै वो हि ब्रह्मसाक्षात्कारहै ॥

पूर्वपक्षी—'योगरूप ब्रह्मसाक्षात्कार होताहै' यिह कहां कहाहै ॥

सिद्धान्ती—सुनिये आत्मपुराणके अष्टमाध्यायमेंभी कहा है ॥

समाधिःफलमुद्दिष्टं धारणाध्यानयोरपि ।
प्रत्यक्षंब्रह्मविज्ञानं सविकल्पमथापरम् ॥

॥ ४८२ ॥

इसश्लोकपर श्रीपं०काकारामजीकी टीका—

यच्चधारणाध्यानयोः फलभूतं ब्रह्मप्रत्यक्षं सविकल्पनिर्विकल्पत्वाभ्यां द्विविधं तद्रूपोयोगः समा-

धिरित्युच्यते एतेन परोक्षविज्ञानरूपः समाधिरंगमिति सूचितम् ॥

अर्थ--धारणाध्यानका फलरूप जो ब्रह्मसाक्षात्कार कहा है वो सविकल्पनिर्विकल्पभेदसें दोप्रकारका होताहै सो ब्रह्म साक्षात्काररूप योग समाधि कहियेहै । ब्रह्मकाप्रत्यक्षज्ञानरूप समाधि कहिनेसें 'परोक्ष*विज्ञानरूप समाधि अष्टमांगहै' ऐसे सूचनकिया जानना भावयिह अष्टमांगसमाधि परोक्षज्ञानरूप होताहै अर फलरूप संप्रज्ञातसमाधि अपरोक्षज्ञानरूप होवेहै इस सें निदिध्यासनकी संप्रज्ञातयोगरूप परिपक्वावस्था ब्रह्मसाक्षात्कार रूप होवेहै अर परोक्षज्ञानरूप समाधि अष्टमांगहै ॥

तामाहुः परमांगतिम् ॥
तां योगमितिमन्यन्ते ॥

यिह यजुर्वेदकी कठोपनिषद्के उक्तवाक्य तो मोक्षसाधन ज्ञानकी अर योगकी एकार्थतामें स्पष्टप्रमाणहै यिहभी विदितरहै कि गतिनाम ज्ञानकाभीहै । हेपाठक सम्यक् विचारिये तो--

नाशान्तोनासमाहितः—
अयोगीनैवजानाति--
नतुयोगमृतेशक्या प्राप्तुंसापरमागतिः—
योगमेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ।

---

* संशयरहित ज्ञानरूप

नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा ॥

इत्यादिक जो उक्त प्रमाण योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहितेहैं वो प्रमाण 'समाधिअवस्थामें हि आत्मसाक्षात्कार होताहै' यिह अर्थसें बोधनकर्तेहैं और—

ततस्तुतं पश्यते निष्कलंध्यायमानः—
समाहितोभूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानंपश्यति—
ध्यानयोगादवैहि—
अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवम्—
दृश्यतेत्वग्र्यया बुद्धया—
समाध्यवस्थायां प्रत्यक्षेन भानात्—
ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसा पश्यन्तियंयोगिनः
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा—
ज्योतिःपश्यन्तियुंजानास्तस्मैयोगात्मनेनमः—
योगिनस्तंप्रपश्यन्ति—
अयंतुपरमोधर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्—
ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येतिसनातनम्—
भासे भये समाधिअवस्था निरावरणआतम न अज्ञान ॥

इत्यादिक उक्तप्रमाण तो समाधिअवस्थाहुए समाधि अवस्थामें हि आत्मसाक्षात्कार प्रतिपादनकर्तेहैं सो दोनोंप्रकारके

सर्वप्रमाण आत्माके प्रत्यक्षज्ञानकी योगकी एकार्थतामें प्रमाणहैं क्युंकि वो श्रुतिस्मृतिआदिक प्रबलप्रमाण अर्थतें वा साक्षात् समाधिअवस्थामें हि आत्मसाक्षात्कार बोधनकर्तेहैं ॥

समाधिअवस्थामें एकाग्रवृत्तिरूपसमाधिविना औरकोई वृत्ति नहिंहोती इससें सो एकाग्रवृत्ति हि समाधिहै वोहि योगहै वोहि आत्मसाक्षात्कारहै ॥

पूर्वपक्षी—यद्यपि एकाग्रवृत्तिरूप सम्प्रज्ञातयोग अर आत्मसाक्षात्कारकी एकार्थता संभवेहै तथापि असंप्रज्ञातावस्थामें सर्ववृत्तिओंका निरोध होनेसें असम्प्रज्ञातसमाधि अर ज्ञानकी एकार्थता बनेनाहिं ॥

सिद्धान्ती—यद्यपि असम्प्रज्ञातदशामें कोई वृत्तिज्ञान नहिंहोता तथापि संस्कारमात्रशेषकूं हि असम्प्रज्ञातयोग कहितेहैं इससें आत्माके प्रत्यक्षज्ञानका संस्कारमात्रशेष हि असम्प्रज्ञात समाधिहै सो आत्माके प्रत्यक्षज्ञानका संस्काररूप होनेसें असम्प्रज्ञातयोग अर ज्ञान एकार्थ संभवेहै ॥

हेपाठक द्वितीयप्रकाशमें वक्ष्यमाणयुक्तिओंसें अर उक्त अनेकप्रबलप्रमाणोंसें निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप योग अर ज्ञानकी एकार्थता प्रसिद्ध हिहै इससें अनुवादमें निदि- ध्यासनकी परिपक्वावस्थाकी दृष्टिसें विज्ञान कहाहै हेसाधो उक्तमंत्रके निदिध्यासनपदका अर्थ तो आत्मपुराणमेंभी ध्यानहि

लिखाहै अर पूज्यपाद भाष्यकारभी निदिध्यासनपदका ध्यानहि अर्थ स्पष्टलिखतेहैं तो तिनगुरोंसें विरुद्धअर्थकल्पन शिष्योंका माननीय नहिंहोता किन्तु हासास्पद हि होवेहै गुरुभाष्यकारोंके वाक्यनकूं त्यागकर तिनसोंविरुद्ध शिष्यवाक्यनकूं रखकर पूर्वपक्ष करणाभी माननीय नहिं होसक्ता किंतु ऐसा पूर्वपक्षभी हासास्पद हिहै ऐसे पूर्वपक्षके समाधानकीभी अधिकआवश्यकता नहिं ॥

पूर्वपक्षी—विपरीतप्रत्ययरूप प्रतिबंधकके निवारणलियेभी ध्यानकी आवश्यकता नहिं क्युंकि श्रवणमननके अनेकवार अभ्यासके प्रभावसें ही विपरीतप्रत्ययकी निवृत्तिभी संभवतीहै अर वाक्यार्थज्ञानसें विपरीतप्रत्ययकी निवृत्ति होनेसें वाक्यार्थज्ञान का प्रतिबंधकभी विपर्यय नहिंसंभवता ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र यदि वाक्यार्थज्ञानसें *विपरीत प्रत्ययकी निवृत्ति होजातीहै ध्यानकी आवश्यकता नहिं तो जो उपनिषद्वाक्य शारीरकसूत्र शांकरभाष्य ताकी टीका भगवद्गीता मनुस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति आत्मपुराण महाभारत विवेकचूडा-मणिआदिकोंके नानावाक्यरूप प्रबलप्रमाण मैं लिखचुकाहुं उन में ध्यान, समाधि, योग, क्युं कथन कियेहैं क्या वेदभगवान्में अर सूत्रकार भाष्यकारादिकोंमें तुमारेजैसी निर्मलबुद्धि नहिंथी कष्टहै कि विवेकीसाधु कहिलातेहुएभी आप दुराग्रहसें ऐसा

---

* अध्यासकी

पूर्वपक्ष क्युं कर्तेहो यद्यपि वाक्यार्थज्ञानका प्रतिबंधक विपरीत प्रत्यय नहिं परन्तु वाक्यके श्रवणजन्य वाक्यार्थज्ञानतो परोक्ष ज्ञान हि होताहै यिहअर्थतो वक्ष्यमाण युक्तिप्रकाशसें तथा

'नान्यथा श्रवणमात्रेण' नान्यथा

इत्यादिक उक्त भाष्यकारादिकोंके प्रबलप्रमाणोंसें सिद्ध हिहै ऐसे वाक्यार्थज्ञानसें अपरोक्षभ्रमकी निवृत्ति नहिं होसक्ती हैभ्रातः अधिष्ठानके प्रत्यक्षहुए बिना श्रवणमननके अभ्यासमात्रसें कबी कहीं अपरोक्ष विपर्यय दूर होसक्ताहै ऐसे कबी नहिंहोसक्ता अर अतीन्द्रिय अधिष्ठानवस्तुका समाधि विना कबी साक्षात्कार होसक्ताहै ऐसेभी कबी नहिं होसक्ता किंतु निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप समाधिसेंहि अतीन्द्रिय आत्माका प्रत्यक्ष होताहै ऐसे समाधिजन्य आत्मसाक्षात्कारसें हि विपरीतप्रत्ययकी निवृत्ति होतीहै हेप्रिय पाठक येही क्रम भाष्यकारोंनेभी विवेकचूडामणिआदिकोंमें स्पष्ट निरूपणकराहै देखिये—

आरूढशक्तेरहमोविनाशः
कर्तुंनशक्यः सहसापिपण्डितैः ॥
येनिर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला
स्तानन्तरानन्तभवाहिवासनाः ॥

देखो यहां भाष्यकारोंने 'निर्विकल्पसमाधिविना' पंडितोंके भी अर्थात् श्रवणमननके कृतअभ्यासवालोंकेभी विपर्ययकी निवृत्ति नहिं होसक्ती, यिह स्पष्ट कहाहे ॥

'विपरीत प्रत्ययकी निवृत्ति कैसे होतीहै कब होतीहै, याका उत्तर भाष्यकार कहितेहैं देखो—

अज्ञानहृदयग्रन्थे र्निःशेषविलयस्तदा ।
समाधिनाऽविकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम् ॥

॥ ३५२ ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

निर्विकल्पसमाधिसें आत्मसाक्षात्कार जब होताहै तब अर्थात् निर्विकल्पसमाधिसें आत्मसाक्षात्कारहुए विपर्ययका 'निःशेषविलय' सम्पूर्ण निवृत्ति होवेहै हेभ्रातः अब नेत्र उन्मीलन कर्कें देखिये कि भाष्यकारस्वामी श्रवणमननके अभ्याससें विपर्यय की निवृत्ति कहितेहैं कि निर्विकल्पसमाधिसें आत्मसाक्षात्कारहुए विपर्ययकी निवृत्ति कहितेहैं हेमित्र सम्यक्देखो कि उक्त मन्त्रके भाष्यमेंभी और इनदोश्लोकोंमेंभी भाष्यकार क्या कहितेहैं अर सुरेश्वरस्वामीके सर्वज्ञात्मकमुनिके वाक्यनकूं आश्रयणकर्कें आप क्या कहितेहो अबविचारो कि मैं तुमारे सर्वज्ञात्ममुनिके सुरेश्वरस्वामीके लेखकूं स्वीकारकरूं अथवा श्रीगुरुभाष्यकारोंके लेखकूं अंगीकार करूं ॥

पूर्वपक्षी—भाष्यकारोंकोभी सांख्यमार्गमें ध्यानका अभाव संमतहै क्युंकि—

'तत्कारणंसांख्ययोगाधिगम्यम्'

इसश्रुतिके व्याख्यानमें भाष्यकारोंने यह कथनकियाहै

वैदिकमेवज्ञानंध्यानंच सांख्ययोगशब्दाभ्यामभिलप्येते ॥

अर्थ—सांख्य और योगशब्दसें वेदोक्तज्ञान अर्थात् ज्ञानाभ्यास और ध्यान यिहदोनों कथन कियेहैं ॥

सिद्धान्ती—ऐसे पूर्वपक्षकर्तें आपको क्या लज्जाभी नहिं आती उपनिषद्वाक्यके सांख्ययोग दोनों शब्दोंकी व्याख्याकर्ते भाष्यकारोंको 'सांख्यमार्गमें ध्यानका अभाव संमतहै' यिह आप अपनीहि विलक्षणप्रज्ञासें कैसे जानतेहो देखो यहां 'वाशब्द' अथवाशब्द, तो नहिंरखा प्रत्युत समुच्चयअर्थ वाला चशब्द रखनेसें 'वैदिक ज्ञानध्यान' इनदोनोंके क्रम समुच्चयमेंहि भाष्यकारोंकी सम्मति स्पष्ट जानीजावेहै हेपाठक स्मरण करिये—

'श्रोतव्योमन्तव्योनिदिध्यासितव्यः'

इसमन्त्रके भाष्यमें भाष्यकारोंने निदिध्यासनका ध्यान अर्थकर्के 'सांख्यरूप श्रवणमनन अर ध्यानरूप निदिध्यासन'

इन तीनोंके 'तुल्य' बराबर अनुष्ठानसें ब्रह्मसाक्षात्कार कहाहै तो आप भाष्यकारोंसें विरुद्धकल्पना क्युं कर्तेहो ॥

हेमित्र यदि सांख्यमार्गमें ध्यानका अभाव संमतहोता अर्थात् योगविना यदि सांख्यमात्रसें आत्मसाक्षात्कार होसक्ता तो भाष्यकार—

श्रुतेःशतगुणंविद्या न्मननंमननादपि ।
निदिध्यासंलक्षगुण मनन्तं निर्विकल्पकम् ॥

॥ ३६४ ॥

इसउक्तश्लोकमें निर्विकल्पसमाधिकीन्यांई श्रवणमननरूप सांख्यकाभी मोक्षरूपअनन्तफल कहिते 'श्रवणमननका' अर्थात् सांख्यका निदिध्यासनतें लक्षगुण न्यूनफल भाष्यकार नहीं कहिते परन्तु भाष्यकारोंने 'सांख्यरूप' विचाररूप श्रवणमनन सें लक्षगुणअधिकफल निदिध्यासनका प्रतिपादनकर्के मोक्षरूप अनन्तफल तो निर्विकल्पसमाधिका हि कहाहै इस अभिप्रायसें हि भाष्यकारोंने श्रवणमननरूपसांख्यमें साधनोंकी समाप्ति अर्थात् कर्तव्यकी समाप्ति नहिंकरी किंतु सांख्यरूप श्रवणमनन सें अनन्तर ध्यानरूप निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप निर्वि-कल्पसमाधिमेंहि कर्तव्यकी समाप्तिकरीहै येही भाष्यकारोंका अभिप्राय श्रीपं०केशवानन्दजीनेभी इसश्लोककी टीकामें दिखाया है सोटीकाभी मैं लिखचुकाहुं ॥

हेमित्र यदि सांख्यमार्गमें ध्यानका अभावहोता तो प्रिय भक्तप्रह्लादकूं विष्णुनारायणजी मोक्षलिये विचार तुझकेहो, यिह वरदेते विष्णुजीने ऐसावर तो नहिंदिया किंतु—

सर्वसंभ्रमसंशान्त्यै परमायफलायच ।
ब्रह्मविश्रान्तिपर्यन्तो विचारोऽस्तुतवानघ ॥

इसउक्तश्लोकमें भक्तप्रह्लादको विष्णुजीने 'मोक्षलिये [ब्रह्मविश्रांतिपर्यन्त] समाधिपर्यन्त विचार तुझकेहो' ऐसावर दियाहै इससें विचाररूप सांख्यसें अनन्तर समाधिरूप ब्रह्म विश्रान्तिकी अपेक्षाहै तो विष्णुजीने विचारसें उत्तर ब्रह्मविश्रांति का वरदिया सो विष्णुकेवरसें जैसी दृढसमाधिरूप ब्रह्मविश्रांति प्रह्लादभक्तको प्राप्तहुई सो पूर्व लिखचुकाहुं ॥

हेभ्रातः यदि सांख्यमार्गमें ध्यानका अभावहै तो गुरु शुक्रजीके सांख्यके उपदेशसें बलिजी चिरपर्यन्त दृढसमाधिमें क्युं स्थितहुए तुमारे मतसें तो बलिजीको चाहियेथा कि गुरु शुक्रजीसें सांख्यका उपदेश सुनाहै फिर तुमारीन्यांई परमात्मा में ध्यानयोगके खंडनपरायणहोते परन्तु तुमारीन्यांई बलिजी नें नहिंकिया प्रत्युत बलिजीभी सांख्यका उपदेश सुनकर समाधिमेंहि स्थितहुए इससें सांख्यसें अनन्तर आत्मसाक्षात्कार लिये समाधिकी आवश्यकता हि बलिजीने प्रकटकरी ॥

हेमित्र विचारविषयक तो मैं विस्तारसें लिखहि चुकाहुं

स्मरणकरिये कि विचाराबिना तो कोई सांसारिक स्थूलकार्यभी सिद्ध नहिंहोता तो निदिध्यासनसमाधिआदि अतिदुर्घट सूक्ष्म कार्य विचाराविना कैसे सिद्धहोसक्तेहैं इससें आत्मसाक्षात्कार पर्यन्त सर्वसाधन विचारसें सिद्धकरे चाहिये आत्मसाक्षात्कारके साधन श्रवणमननिदिध्यासनादिकोंके जो लक्षण विद्यारण्यजी ने लिखेहैं वो मैं लिखचुकाहुं उनश्लोकोंकूं फिर देखलीजिये और यिहभी मैं पूर्व लिखचुकाहुं कि श्रवणकियेविना अत्यन्त अज्ञातवस्तुविषयक तो एकवृत्तिभी नहिंहोती तो तिलविषयक सदृशवृत्तिओंका प्रवाहरूप ध्यान कैसे होसकेहै अर मननकिये विना निश्चयके अभावसें अर्थात् संशययुक्तहोनेसें ध्यानमें दीर्घ काल निरन्तर सम्यक् प्रवृत्ति नहिंहोती इससें ध्यानसिद्ध नहिं होसक्ता ऐसे श्रवणमननविना ध्यान नहिंहोसक्नेसें श्रवणमनन पूर्वकाहि ध्यानहोताहै इससें 'ध्यानलिये तिसश्रवणमननकी अपेक्षानहिं' यिहकथन तो दुराग्रहसें दूषितहिहै स्मरणकरिये उक्त भाष्यमें भाष्यकारोंने—

ततोनिदिध्यासितव्यो निश्चयेनध्यातव्यः ॥

'तिसश्रवणमननसें अनन्तर निश्चयसें ध्यान कराचाहिये' यिह स्पष्टकहाहै वहुतक्या हेपाठक

एवंह्यसौदृष्टोभवति श्रवणमनननिदिध्यासनसाधनै र्निर्वर्तितैः यदैकत्वमेतान्युपगतानि तदासम्यग्दर्शनम्

नान्यथा श्रवणमात्रेण ॥

इत्यादिक भाष्यकारोंके उक्तवाक्यनसें विरुद्धवाक्य माननीय नहिंहोसक्ते ॥

पूर्वपक्षी—पूर्वउक्त समग्रश्रुतिआदिक वचनोंका यह रहस्यहै कि विचारका अपरपर्याय सांख्यमार्ग योगमार्गसें भिन्न स्वतन्त्र आत्मसाक्षात्कारका साधनहै ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र यिह श्रुतिवचनोंका रहस्य नाहिं किंतु यिह तुमारे दुराग्रहदूषित वचनोंका रहस्यहै आश्चर्यहै आश्चर्यहै देखिये प्रत्यक्षज्ञानअर्थवाले—

'पश्यते पश्यति दृश्यते द्रष्टव्यः'

इत्यादिक क्रियापदोंसहित ध्यानयोगसें आत्मसाक्षात्कारके प्रतिपादक अनेकश्रुतिवचन जैसे मैं लिखचुकाहुं हेभ्रातः 'योगसें विनाभी सांख्यसें आत्मसाक्षात्कारहोताहै' ऐसा स्पष्टअर्थवाला तो एकभी श्रुतिवचन तुमने नाहिंलिखा नहिंकहा तो समग्र श्रुतिवचनोंका रहस्य आप कैसे कहनेयोग्य होसक्तेहो और जो—

तत्कारणंसांख्ययोगाधिगम्यम् ॥

यिह एकहि श्रुतिवचन तुमने लिखा वोभी द्वन्द्वसमाससें सांख्ययोगके क्रमसमुच्चयकूंहि बोधनकरेहै यिह विस्तारसें पूर्व

लिखचुकाहुं और भाष्यादिकोंसें विरुद्ध तुमारा मनोघटितअर्थ तो माननीय नहिंहोसक्ता ॥

हेपाठक यद्यपि परोक्षज्ञानकेजननमें श्रवणमननरूप सांख्य स्वतन्त्र साधन कहियेहै तथापि सम्यक् विचारिये तो शमदम समाधानरूप योगांशविना तो परोक्षज्ञानजननमेंभी सांख्य समर्थ नहिं क्युंकि स्वशरीरादि सर्वदृश्यसें भिन्न सर्वांतर सूक्ष्मतम आत्माकार परोक्षज्ञानरूपा वृत्तिभी शमदमसमाधानादि विना नहिंहोसक्ती इसीहेतुसें उपनिषदादिकोंमें आत्मा दुर्दर्श कहाहै अर इसीहेतुसें शमदमसमाधानादिसाधनोंसें अनन्तरहि श्रवणमननरूप विचारका अधिकार वेदांतग्रन्थोंमें लिखाहै यिह विद्वज्जन जानतेहिहैं इसहेतुसें शमदमसमाधानरूप योगांशकी सहकारितासेंहि सांख्य परोक्षज्ञानकाहेतुहै श्रवणवननसें कथन मात्र ज्ञान होताहै वो मोक्षफलका हेतु होवेनहिं यिह विवेक चूडामणिमें भाष्यकारोंनेभी कहाहै—

नगच्छतिविनापानं व्याधिरौषधशब्दतः ।
विनाऽपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्नमुच्यते ॥

॥ ६२ ॥

अकृत्वाशत्रुसंहार मगत्वाऽखिलभूश्रियम् ।
राजाऽहमितिशब्दान्नो राजाभवितुमर्हति ॥

॥ ६४ ॥

अर्थ—औषधके पान विना औषधकेशब्दोंसें रोग नहिं चलाजाता तैसे अपरोक्षज्ञानविना 'मैंब्रह्महुं तूंब्रह्महै सर्वजगत् ब्रह्महै, ब्रह्मसेंभिन्न कुछभी नहिं' ऐसे ब्रह्मशब्दोंसें मुक्त नहिं होसक्ता ॥ ६२ ॥

शत्रुराजोंके संहारकियेविना अर समग्रभूमिकी सम्पदाकूं प्राप्तहुएविना 'मैंराजाहुं' ऐसेशब्दसें राजा नहिंहोसक्ता ॥ ६४ ॥

एवं हेमित्र यदि शमदमसमाधानरूप योगांशविना परोक्ष ज्ञानका हि स्वतन्त्रसाधन सांख्य नहिंहोसक्ता तो अपरोक्षज्ञान का स्वतन्त्रसाधन सांख्य कैसे होसक्ताहै किन्तु उक्त योगांशकी सहकारितासें श्रवणमननरूप सांख्यकर परोक्षज्ञानहुएतें अनंतर निदिध्यासनरूपध्यानयोगद्वाराहि आत्मसाक्षात्कारहोताहै इससें योगविना सांख्यमात्रसें आत्मसाक्षात्कार नहिंहोसक्ता ॥

पूर्वपक्षी—योगसेंविना बोध नहिंहोता यह केईक पुरुषों का कथन श्रुतिस्मृति तथा विद्वानोंके अनुभवसें विरुद्धहै ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र तुमारा यिह दुराग्रहसें कथनहि श्रुति स्मृति तथा विद्वानोंके अनुभवसें विरुद्धहै क्युंकि 'योगविना आत्मसाक्षात्कार नहिंहोता' इसअर्थमें श्रुतिस्मृति महाभारत आत्मपुराण श्रीशंकराचार्यादिकोंके वाक्यरूप अनेकप्रबलप्रमाण मैं लिखचुकाहुं तिनकूं देखकरभी फिर आप असत्कथन कर्तेहो तो यिह आपका क्या दुराग्रह नहिंहै ॥

यदि आपकहो कि यिहप्रमाण तो तूं अब लिखरहाहै हमनें पहिलेहि कब देखलिये तो हेभ्रातः पातञ्जलदर्शनकी योगचन्द्रिका टीकाके अनुबंधनिरूपणमें केईकप्रमाण मैं लिख चुकाहुं तिनकूं आप देखचुकेहैं ॥

ध्यानयोगविना श्रवणमननरूप सांख्यसें अतीन्द्रियवस्तु का प्रत्यक्षज्ञान नहिंहोसक्का किन्तु ध्यानयोगसेंहि अतीन्द्रिय पदार्थका साक्षात्कार होताहै ऐसे विद्वानोंके संशयरहित अनुभव सेंभी तथा उक्त बहुत प्रबलप्रमाणोंसेंभी विरुद्धहोनेतें ध्यानयोग विना आत्मसाक्षात्कारका कथन समीचीननहिं इससें माननीय नहिंहोसक्का इसहेतुतें मुमुक्षुजनोंको श्रवणमननरूप सांख्य सें अनन्तर आत्मसाक्षात्कारलिये निदिध्यासनरूप ध्यानयोग अवश्यं करणीयहै ॥

बहुत क्या लिखूं वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावलिकी टीकाकी भूमिकाके १९वें पृष्ठकी २२वीं अन्तिमापंक्तिमें श्रीगुरुदत्तसिंहजी महाराजनेंभी लिखाहै—

## अद्वयानन्दके आविर्भावमें मिथ्याद्वैतदर्शनको प्रतिबंधकपना निरूपणकिया ॥

अर्थ यिह—वस्तुके 'प्रकाशका' साक्षात्कारका नाम आविर्भावहै अर अद्वयानन्दरूप आत्माहै ताका साक्षात्कारहि

आविर्भावहै 'मिथ्याद्वैतकी प्रतीति' मिथ्याद्वैताकार वृत्ति ताका प्रतिबंधकहै इस कथनसें अद्वयानन्द आत्माके साक्षात्कारका मिथ्याद्वैतकी प्रतीति प्रतिबन्धकहै यिहअर्थ सिद्धहुआ अब विचारिये कि अद्वयानन्दात्माका आविर्भावरूप कार्य तो मुमुक्षु पुरुषको मोक्षलिये अवश्यं अपेक्षितहै अर प्रतिबंधकके होते कार्य होनाहिं सक्ता यिह निर्विवाद नियमहै इससें आत्माके साक्षात्कारलिये मिथ्याशरीरादिसकलद्वैतकी प्रतीतिरूप प्रतिबंधकका निरोध अवश्यं अपेक्षितहै हेपाठक विचार देखिये सो शरीरादिसकलमिथ्याद्वैतकी प्रतीतिके निरोधवाली अवस्था योगरूप हि है क्युंकि सो अनात्माकारविजातीयवृत्तिसें रहितहै एवं अद्वयानन्दात्माके साक्षात्कारलिये सो उक्तप्रतिबन्धकके निरोधवाली अवस्थारूपयोग श्रीगुरुदत्तसिंहजीके लेखसें अर्थात् गुरुदत्तसिंहजीकोभी अवश्यं अपेक्षितहुआ ॥

हेमाननीय भ्रातृगण स्वस्वचित्तकूं सावधानकर्के परीक्षा कीजिये कि प्रातःसें पुनःप्रातःपर्यन्त अष्टप्रहरमें देश काल स्थान शरीर प्रकाश अंधकारादि मिथ्याद्वैतकी प्रतीतिरूप प्रतिबंधकके निरोधपूर्वक अद्वयानन्दात्माका साक्षात्काररूप आविर्भाव प्रहर चतुर्घटिका द्विघटिका कितनासमयतक होताहै भावयिह यदि उक्त प्रतिबन्धकके निरोधपूर्वक एकघटिकामात्रभी ऐसा साक्षात्काररूप आविर्भाव होताहै तो शुभहुआ कल्याणहुआ

यदि ऐसा आविर्भाव घटिकामात्रभी नहिंहोता तो हेमित्र ताके निदिध्यासनादि साधनोंमें प्रवृत्तहोना अवश्यं अपेक्षितहै ॥

यदि किसीप्रतिबन्धकवशसें ताके निदिध्यासनादि साधनों में *तत्पर नहिंहोसके तो श्रुतिस्मृतिविरुद्ध तथा युक्तिविरुद्ध अर्थका हठसें प्रतिपादनकरणा तो उचितनहिं धर्मनहिं किन्तु सत्यता सरलतारूप साधुताकूं स्मरणकर्के श्रुतिस्मृतिप्रमाणोंसें सिद्ध तथा युक्तिसिद्ध अर्थका निर्पक्षतासें निरूपणकरणा विद्वानों का शुक्लधर्महै ॥

शङ्का—यदि अद्वयानन्दात्माके आविर्भावका प्रतिबन्धक मिथ्याद्वैतका दर्शन श्रीगुरुदत्तसिंहजी लिखतेहैं तो, योगनिरपेक्ष सांख्यमात्रसें आत्मसाक्षात्कार क्युं लिखा भावयिह यदि उक्त प्रतिबन्धकका निरोध नहिंकरें तो प्रतिबन्धकके विद्यमानहोनेसें अद्वयानन्दात्माका †साक्षात्कार नहिंहोसकेगा यदि उक्तप्रतिबन्धकका निरोधकरेंगे तो देशकालस्थान आसन शरीर दिन रात्रि प्रकाश अन्धकारादि मिथ्याद्वैतदृष्टिका निरोधहोनेसें अर्थात् अनात्माकार सर्वविजातीयवृत्तिओंका निरोधहोनेसें योगावस्था प्राप्तहोगी इससें योगविना सांख्यमात्रसें आत्मसाक्षात्कार सिद्ध नहिंहोगा ॥

समाधान—'भ्रमसें जब किसीमतमें दुराग्रहहोताहै तब

---

* तदासक्त † आविर्भाव

अन्यशास्त्रोंका तो कहां अपने पूर्वअपर वाक्यनकाभी रहस्यार्थ भान नहिंहोता, इसअर्थके विज्ञापनलिये लिखदियाहै हेमित्र नहिंतो श्रीगुरुदत्तसिंहजी विद्वान्हैं 'योगविना समाधिविना आत्मसाक्षात्कार नहिंहोता याअर्थमें कथित प्रबलप्रमाणोंकूं तथा वक्ष्यमान युक्तिओंकूं क्या वो जानतेनहिं हेपाठक जानते हिहैं कि उक्त केईकश्रुति दक्षस्मृति आत्मपुराण महाभारत विवेकचूडामणि आदिक प्रबलप्रमाण तो 'योगविना' समाधि विना आत्मसाक्षात्कारके अभावका प्रतिपादनकर्तेहैं और उक्त केईक श्रुतिस्मृतिआदिक प्रबलप्रमाण तो ध्यानयोगसें आत्म- साक्षात्कारका बोधनकर्तेहैं और कथित—

तंपश्यते निष्कलंध्यायमानः—
समाहितोभूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानंपश्यति—
समाध्यवस्थायां प्रत्यक्षेनभानात्—
ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसा पश्यन्तियंयोगिनः
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा—
स्वयंचशक्यतेद्रष्टुं सुसमाहितचेतसा—
भासेभये समाधिअवस्था निरावरणआतम
न अज्ञान ॥

इत्यादिक श्रुतिस्मृतिरूप प्रबलप्रमाण तो 'समाधिअवस्था

प्राप्तहुए समाधिअवस्थामें हि आत्मसाक्षात्कार होताहै, इसअर्थ का स्पष्ट प्रतिपादनकर्तेहैं ऐसे उक्त उपनिषद्, शारीरकसूत्र, ताका भाष्य, भाष्यकीटीका, न्यायसूत्र, गीता, याज्ञवल्क्यस्मृति, मनुस्मृति, महाभारत, वासिष्ठ, दक्षस्मृति, आत्मपुराण, विवेक-चूडामणि, विचारसागरादिक अनेक प्रबलप्रमाणोंसें समाधि हि आत्मदर्शनका व्यवधानरहित साक्षात्साधनहै इससें प्रसंख्यान हि आत्मसाक्षात्कारका करणहै ॥

शङ्का—पहिले समाधिरूप आत्मसाक्षात्कार तुमने कथन किया अब आत्मसाक्षात्कारका करण समाधि कहितेहो तो तुमारे वाक्यनमें विरोध क्युं नहिंहोगा ॥

समाधान—अङ्गसमाधि अर फलसमाधिके भेदसें कुछभी विरोध नहिं अर्थयिह अष्टांगसमाधि करणहै अर फलरूप सम्प्रज्ञातसमाधि आत्मसाक्षात्काररूप प्रमाहै ॥

'चित्तवृत्तिमें चिदात्माका प्रतिबिम्ब ज्ञानकहियेहै' ऐसे जो मानतेहैं तिनके मतमें अष्टाङ्गसमाधिके अभ्यासजन्य सम्प्रज्ञातसमाधिरूप एकाग्रवृत्ति 'करणहै' प्रत्यक्षप्रमाणहै अर तिसवृत्तिमें चिदात्माका प्रतिबिम्ब आत्मेक्षणरूप प्रत्यक्षप्रमाहै यिह प्रबलप्रमाणोंसें सिद्धहुआ इसहेतुसें यदि मोक्षलिये आत्म-साक्षात्कारकी अभिलाषाहै तो मुमुक्षुजनोंने श्रवणमननसें आत्माके परोक्षज्ञानहुएसें अनन्तर निदिध्यासनद्वारा समाधिरूप

करणके उत्पादनमें अवश्यं प्रयत्न कराचाहिये इसीअभिप्रायसें महाभारतमें बहुतदृष्टान्तोंसें कहाहै कि जैसे रागवान् योगी निन्दनीयहै तैसे योगरहित विरक्तभी निन्दनीयहै ॥

रागीयुक्तः पचमानोत्महेतो-
र्मूर्खोवक्तानृपहीनंचराष्ट्रम् ॥
एतेसर्वेंशोच्यतांयान्तिराज-
न्यश्चायुक्तः स्नेहहीनःप्रजासु ॥

१२ ॥ २९१ ॥ २६ ॥

अर्थ—भगवत्पराशरजी जनकप्रति कहितेहैं कि हेराजन् रागवाला योगाभ्यासी और अपनेलिये अन्नकूं पकाता अर मूर्ख उपदेष्टा और राजासेंरहित देश यिहसर्व शोकनीयहैं अर्थात् निन्दनीयहै ऐसेहि जो पुत्रादिकोंमें स्नेहरहित अर्थात् पुत्रैषणा लोकैषणा वित्तैषणासें रहित विरक्तपुरुष योगाभ्याससें रहितहै तो सोभी निन्दनीय हि हैं हेभ्रातः २५वें अर २६वें इसश्लोककी अवतारणिकामें श्रीपण्डितनीलकण्ठजीनेभी ऐसेहि लिखाहै देखिये—

यथाऽसूयावान्योगी निन्द्य एवंविरक्तोपि योग शून्यो निन्द्यएवेति बहुदृष्टान्तपूर्वकमाह ॥

अर्थ—जैसे असूया वाला योगी निन्दायोग्यहै ऐसेहि

योगसैंरहित विरक्तभी निन्द्रायोग्यहिहै यिह बहुतदृष्टान्तपूर्वक मूलश्लोकोंमें कहितेहैं भावयिह शरीरादि सर्व अनात्मपदार्थोंतें चित्तवृत्तिओंके निरोधद्वारा परमात्मामें चित्तकी स्थिति हि वैराग्य वत्तारूप विरक्तताका फलहै क्युंकि जिसजिसपदार्थमें वैराग्य होताहै उसउसपदार्थतें चित्त निवृत्तहोवेहै अर्थात् उसउसपदार्थतें चित्तवृत्तिओंका निरोध होताहै यिह सर्वबुद्धिमानोंके अनुभव सिद्धहिहै इसहेतुतें जिसमहात्मापुरुषके जब दृष्टश्रुत सर्वविषयों में वैराग्य उदयहोवेहै तब तिस विरक्तपुरुषके तिनदृष्टश्रुत सर्वविषयोंतें चित्तवृत्तिओंका निरोध अवश्यं हि होनाचाहिये दृष्टश्रुतसर्वविषयोंविषयक वृत्तिओंके निरोधहुए अर्थात् शरीरादि सर्व अनात्मपदार्थोंविषयक वृत्तिओंके निरोधहुए केवल आत्मामें चित्तकी समाधिरूप स्थिति अवश्यं होनी हि चाहिये इससें विरक्तताका यिह नियत फलहै हेप्रियपाठक जिस महात्मापुरुष के ऐसा समाधिरूप फल नहिं है तो तिसके वो बाह्यविरक्तताहै आभ्यंतरी नहिं है यिह फलाभावरूपहेतुतें जानाजाताहै इस भावसें भारतश्लोकमें अर नीलकण्ठीटीकामें कहाहै कि योगसें रहित विरक्तभी निन्दायोग्यहिहै ॥ ४ ॥

अब प्रथमप्रकाशकी समाप्तिका मंगलश्लोक कहिते हैं—

निर्पक्षपाताद्यादिशुक्लपुण्यम्
प्रोक्तंमयाचेद्धतपक्षपातम् ।

युक्तेमदीयात्मनिभातुतर्हि
सर्वान्तरात्मापिनिरावृतः सन् ॥ ५ ॥

टीका—अन्यायसें सहायतामें हठका नाम पक्षपातहै ऐसे पक्षपातसें अवश्यं पाप उत्पन्न होताहै अर पक्षपातके त्याग सें अर्थात् न्याययुक्त प्रवृत्तिसें केवलपुण्य उदयहोताहै इससें कहेहैं कि यदि निर्पक्षपाततें केवल पुण्य उदयहोताहै अर यदि मैंने पक्षपातसेंरहित कथन कियाहै तो सर्वान्तरभी परमात्मा मेरे समाहितहुए मनमें निरावृतहुआ प्रकाशे ॥ ५ ॥

इति श्रीहरिद्वारे पातञ्जलाश्रमनिवासिना
तेजोनाथेनोदितीकृत आत्मेक्षण
प्रमाणार्के प्रमाणप्रकाशः

प्रथमः ॥ १ ॥

# अथ युक्तिप्रकाशः प्रारभ्यते

श्रीगणनाथायनमोनमः                                                        श्रीसरस्वत्यैनमोनमः

ताशिवसों बंदोकरजोरी । धरहृदिध्यानबहोरबहोरी ॥
सर्वधियोंकाप्रेरकजोही । जाप्रेरणतें उदयकियोही ॥
आतमदृष्टिप्रमाणकुभानू । विद्वज्जनकमलनहर्षानू ॥
ताकाभियोप्रमाणप्रकाशा।युक्तिप्रकाशकुकरूंविकाशा।

प्रबल प्रमाणोंकूं देखके सुनकेभी युक्तियोंसें अर्थके निर्णय कियेबिना प्राज्ञजनोंको सन्तोष होवे नहिं इसहेतुसें 'आत्माके ईक्षणरूप प्रत्यक्षप्रमाका समाधि हि करणरूप प्रत्यक्ष प्रमाणहै' इसअर्थमें उपनिषद् वेदान्तसूत्र भाष्य गीता दक्षस्मृति आदिक अनेकप्रबल प्रमाणोंकूं प्रथमप्रकाशमें दिखलायके अब तिसी अर्थमें युक्तिओंके निरूपणलिये द्वितीयप्रकाशका आरम्भ कर्तेहुए पहिले मङ्गलश्लोक कहितेहैं ॥

बन्देतंयन्नियुक्तेन मयोदितीकृतः शिवम् ।
आत्मेक्षणप्रमाणार्को विद्वज्जलजहर्षदः ॥

॥ १ ॥

पूर्वोमानप्रकाशोऽस्य विस्तारितोमयासखे ।
दर्शयाम्युत्तरंचापी दानींयुक्तिप्रकाशनम् ॥

॥ २ ॥

टीका—तिसशिवकूं मैं बन्दना कर्ताहुं जिस अन्तर्यामी शिवसें प्रेरेहुए मैंने विद्वज्जनरूप कमलोंकूं हर्षदेनेवाला सूर्यवत आत्मेक्षणप्रमाणार्कनामा ग्रन्थ उदय कियाहै ॥ १ ॥

इस आत्मेक्षणप्रमाणार्कका पहिला प्रमाणप्रकाश मैंने विस्तार दियाहै हेसखे अब उत्तरले युक्तिप्रकाशकूंभी दिखलाताहुं ॥ २ ॥

आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाके करणका अब युक्तिसें निर्णय कर्तेहैं ॥

प्रसंख्यानादृतेतस्य करणंनैवसम्भवेत् ।
किमप्यतीन्द्रियत्वाद्धि विज्ञेयस्यपरात्मनः ॥ ३ ॥

टीका—निदिध्यासनकी परिपक्वावस्थाका नाम प्रसंख्यानहै योग अर समाधिभी तिसीके नामान्तरहैं ऐसे प्रसंख्यान सेंविना तिस आत्मदर्शनका औरकोईभी करण नहिं बनता क्युंकि प्रत्यक्षकरणेयोग्य जो सर्वान्तर परमात्मा सो अतीन्द्रियहै जाकूं नेत्रादिक इन्द्रिय विषय नहिं करसकें सो अतीन्द्रिय कहियेहै । यहां ऐसा अनुमानहै—

आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमा प्रसंख्यानेतरकरणाजन्या अतीन्द्रियवस्तुगोचरप्रत्यक्षप्रमात्वात् त्रिगुणात्मकप्रकृतिगोचरप्रत्यक्षप्रमावत् चित्तस्थसंस्कारगो-

**चरप्रत्यक्षप्रमावत् चित्तगोचरप्रत्यक्षप्रमावत् अदृष्ट गोचरप्रत्यक्षप्रमावच्च ॥**

अर्थ—आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा प्रसंख्यानतें अन्यकिसी करणसें जन्यनहिं किससें कि अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमा होनेसें जोजो अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमा होतीहै वोवो प्रसंख्यानतें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिंहोती जैसे त्रिगुणात्मक प्रकृतिकी प्रत्यक्षप्रमा, चित्तस्थसंस्कारोंकी प्रत्यक्षप्रमा, चित्तकी प्रत्यक्षप्रमा, अदृष्टोंकी प्रत्यक्षप्रमा, यिह अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्ष प्रमाहैं वो समाधितें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिंहैं तैसे आत्मा की प्रत्यक्षप्रमाभी अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाहै इसहेतुसें समाधितें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिंहै किन्तु प्रसंख्यानकरण मात्रसें जन्यहै ॥

पूर्वपक्षी—हेमित्र वादीप्रतिवादीओंके प्रसिद्धकूंहि दृष्टान्त विद्वज्जन रखतेहैं उक्तअनुमानमें प्रकृतिआदिगोचरप्रत्यक्षप्रमा प्रसिद्ध नहिंहै अर्थात् 'प्रकृतिसंस्कारादिकोंकाभी प्रत्यक्षज्ञान होताहै' यिह प्रसिद्धहि नहिंहै किन्तु प्रकृतिसंस्कारादिक अनुमेय पदार्थहैं यिह प्रसिद्धहै इससें उक्त अनुमानमें दृष्टान्ताभावहोनेसें हेत्वाभासहै इसकूं अनुपसंहारी हेत्वाभास कहितेहैं ॥

सिद्धान्ती—यद्यपि ध्यानजप्रत्यक्षसें रहित पुरुषोंको प्रकृतिसंस्कारादिक अनुमेयपदार्थहैं क्युंकि अतीन्द्रियहैं अतीं-

द्रियवस्तुका समाधिविना प्रत्यक्षहोसके नहिं तथापि प्रकृति संस्कारादिकोंका समाधिजन्यप्रत्यक्षज्ञान योगीजनोंको होताहै यिह श्रुतिस्मृतिआदिकोंमें तथा विद्वज्जनादिकोंमें प्रसिद्धहीहै देखिये श्वेताश्वतरोपनिषद्मेंभी प्रसिद्धहै—

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥

म० १॥३॥

अर्थ—जो महर्षिजन मिलकर विचारकरणेसेंभी जगत्के कारणका निश्चय नहिं करसके वो महर्षिजन 'ध्यानयोगकूं प्राप्त हुए' समाहितहुए जगत्का मूलकारण अपने सत्वरजःतमोगुणोंसें निगूढ परमात्मदेवकी मायाशक्तिकूं प्रत्यक्ष कर्तेभे इसमन्त्रकी अवतारणिकामें देखो भाष्यकार स्पष्ट कहितेहैं—

एवं पक्षान्तराणि निराकृत्य प्रमाणान्तरा गोचरे वस्तुनि प्रकारान्तर मपश्यन्तो ध्यानयोगा- नुगमेन परममूलकारणं स्वयमेव प्रतिपेदिर इत्याह ॥

अर्थ—ऐसे पक्षांतरोंकूं खंडनकर्के अन्यप्रमाणोंके अविषय वस्तुमें प्रकारांतरकूं न देखतेहुए वो महर्षिजन आपहि ध्यान योगकी प्राप्तिसें जगत्के परममूलकारणकूं प्रत्यक्ष कर्तेभे यिह श्रुति कहे है ॥

भगवद्भागवतमेंभी प्रसिद्धहै—

भक्तियोगेनमनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत्पुरुषंपूर्वं मायांचतदपाश्रयाम् ॥

स्कन्ध १ ॥ अ० ७ ॥ ४ ॥

भगवद्व्यासजी भक्तियोगसें सम्यक् ‘प्रणिहिते’ समाहित किये निर्मलमनमें प्रथम परमात्मपुरुषकूं प्रत्यक्ष किया फिर तिस परमात्माके ‘अधीन’ वशवर्तिनी मायाकूं प्रत्यक्ष कर्तेभे ॥

संस्कारोंका साक्षात्कारभी पातञ्जलदर्शनमें तृतीयपादके १८वें सूत्रमें स्पष्टकहाहै अर ताके भाष्यमें भगवद्व्यासजीनेभी तिन स्मृतिके हेतु संस्कारोंके अर अदृष्टरूप संस्कारोंके साक्षात्कारमें योगीन्द्र जैगीषव्य दृष्टान्तकहाहै ऐसे योगीन्द्र जैगीषव्य अर आवट्यका मनोहर संवादभी पातञ्जलभाष्यमें व्यासजीनें लिखाहै ताका भाषाअर्थभी योगचन्द्रिकाटीकामें लिखाहै तिसीपादके १९वें सूत्रमें परचित्तका अर ३३वें सूत्रमें स्वचित्तका प्रत्यक्षज्ञान प्रसिद्धहीहै ॥

बहुत क्या श्रुति सूत्र स्मृति इतिहास पुराणादिकोंमें तथा विद्वज्जनोंमें यिह तो प्रसिद्धहीहै कि योगीजनोंके ‘सर्वज्ञता’ सर्वपदार्थोंका प्रत्यक्षज्ञान होताहै इससें प्रकृतिसंस्कारादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमारूप दृष्टान्त अप्रसिद्ध नहिं किन्तु वादिप्रतिवादिओंके प्रसिद्धहीहैं ॥

शङ्का—प्रकृतिसंस्कारादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमा आरूढयोगी कोहि होनेसें 'जोजो अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाहोतीहै वोवो प्रसंख्यानतें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिंहोती जैसे प्रकृति संस्कारादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमा अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाहैं वो समाधिरूपकरणतें अन्यकिसीकरणसें जन्यभी नहिंहैं, ऐसे व्याप्तिका निश्चयभी आरूढयोगीकोहि होवेगा इससें 'आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा प्रसंख्यानतें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिंहै ऐसा अनुमिति ज्ञानभी आरूढयोगीकोहि होवेगा इतर अयोगीजनको उक्त अनुमितिज्ञान नहिं होसकेगा ॥

समाधान—वेदान्तग्रन्थनमें जैसे जिज्ञासुओंको बोधलिये

## जीवो ब्रह्माभिन्नः चेतनत्वात् ब्रह्मवत् ॥

इस अनुमानमें ब्रह्मदृष्टान्तकहाहै ब्रह्मप्रत्यक्षवाले महाशयों लिये तो यिह अनुमान अपेक्षितहि नहिं अर जिज्ञासुजनोंको ब्रह्मप्रत्यक्ष नहिं किन्तु शास्त्रसें गुरुमुखसें श्रवणकियाहै तिस श्रुतब्रह्मरूप दृष्टान्तमेंभी व्याप्ति निश्चय कराईजावेहै तैसे समाधि जन्य प्रकृतिसंस्कारादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमारूप दृष्टान्तोंका श्रुति सूत्र स्मृति इतिहास पुराणादिप्रमाणोंतें आस्तिकपुरुषोंको शाब्द निश्चयहोनेसें तिनकोभी तिनदृष्टान्तोंमें उक्तव्याप्तिका निश्चय होवेहै तिससें तिन आस्तिक अयोगीपुरुषोंकोभी 'आत्माकी प्रत्यक्ष प्रमा प्रसंख्यानतें अन्यकिसीकरणसें जन्य नहिं' ऐसा अनुमिति

ज्ञान होताहै सुखदुःखादिक साक्षिभास्यहैं इससें तिनका ज्ञानभी किसीकरणजन्य नहिंहै ऐसे सुखदुःखादिकोंके ज्ञानमें अतीन्द्रिय वस्तुगोचरप्रत्यक्षप्रमात्वरूपहेतु अर प्रसंख्यानेतरकरणाजन्यत्वरूप साध्य वर्तते हिहैं ॥

यदि सुखदुःखादिकोंके ज्ञानकूं मनःकरणसें जन्य मानोंगे अर्थात् अन्तःकरणसें जन्य मानोंगे तो तिसमतमें मनइन्द्रियसें ग्राह्य होनेतें सुखदुःखादिक अतीन्द्रिय नहिं कहिने होंगे इससें सुखःदुखादिकोंके मानसप्रत्यक्षमें उक्त साध्यका अभावहै तहां उक्तहेतुकाभी अभावहै इससें उक्तअनुमान निर्दोषहै ॥

विदितरहै कि ज्ञानके बाह्यकरण होनेसें चक्षुःश्रोत्रादिक बाह्यइन्द्रियहैं । ज्ञानका अन्तर्करणहोनेसें मन अन्तरइन्द्रियहै इसीसे इसका 'अन्तःकरण' यिह नाम प्रसिद्धहै यदि मनकूं इन्द्रिय नहिंमानेंगे तो 'अतःकरण' यिह प्रसिद्धनामहि असंगत होगा अर भगवत्नेंभी गीतामें मन प्रधानइन्द्रियरूप कहाहै देखो—

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

चक्षुःश्रोत्रादिक बाह्य इन्द्रियहैं मन बुद्धि अन्तरइन्द्रियहैं इसी अभिप्रायसें कठोपनिषद्में कहाहै—

तां योगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम् ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

मनरूप अन्तरइन्द्रियकी हि स्थिर*धारणा योगशब्दका अर्थहै। श्रोत्रादिक वाह्यइन्द्रिय तो मनके स्थिरहुए स्थिरहोते ह मनके चंचलहुए चंचलहोते हैं ॥

एवं हेमित्र प्रकृतिसंस्कारादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमारूप अन्वयि दृष्टान्त तो आस्तिक वादीप्रतिवादिओंके प्रसिद्धहि हैं और घट पटकटादिकोंकी प्रत्यक्षप्रमारूप व्यतिरेकिदृष्टान्तभी प्रसिद्धहैं देखिये जोजो समाधितें अन्यकिसीकरणसें अजन्य नहिंहोती वोवो अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाभी नहिंहोती जैसे घटकी पटकी कटकी प्रत्यक्षप्रमा समाधितें भिन्नकिसीकरणसें अजन्य नहिं हैं सो अतीन्द्रियवस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाभी नहिंहैं किन्तु वो ऐन्द्रियक वस्तुकी प्रत्यक्षप्रमाहैं ॥

पूर्वपक्षी—यद्यपि उक्तअनुमानमें अन्वयव्यतिरेकि दृष्टान्त प्रसिद्धहैं इससें अनुपसंहारी हेत्वाभास नहिं है तथापि वाधित हेत्वाभासहै क्युंकि बृहदारण्यकउपनिषद्के—

तंत्वौपनिषदंपुरुषंपृच्छामि ॥

* स्थिति

अर्थ—मुनिवर याज्ञवल्क्यजीने शाकल्यकूं कहा कि तिस औपनिषदपुरुषकूं मैं पूछताहुं उपनिषद् जाका 'प्रतिपादनकरे' बोधनकरे सो औपनिषद कहियेहै इसमन्त्रमें आत्माकूं उपनिषद् प्रतिपाद्य कहाहै और कठउपनिषद्के—

सर्वेवेदायत्पद मामनन्ति ॥

अ० १ ॥ वल्ली २ ॥ १५ ॥

अर्थ—सर्ववेद जिसपदकूं प्रतिपादनकर्तेहैं इसमन्त्रमेंभी आत्माके बोधक वेद कहेहैं इससें आत्मा उपनिषद्बोध्य कहिने सें आत्माकी प्रत्यक्षप्रमारूपपक्षमें प्रसंख्यानेतरकरणाजन्यत्व साध्यके अभावका निश्चयहोवेहै इससें वाधित हेत्वाभासहै ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र उपनिषद्वाक्यनसें आत्माका प्रत्यक्ष ज्ञानभी होसकेहै अथवा परोक्षज्ञान हि होताहै इनमें प्रथमपक्ष तो 'समीचीन नहिं' यथार्थ नहिं क्युंकि—

१—तंत्वौपनिषदंपुरुषंपृच्छामि ।
सर्वेवेदा यत्पद मामनन्ति ।

इन उक्त उपनिषद्वाक्यनमें प्रत्यक्षज्ञानका बोधक कोई क्रियापद नहिं है और प्रतिपादनबोधनशब्द ज्ञानसमानके बोधक हैं तो युक्तिप्रमाणोंसें विरुद्ध तुमारी प्रत्यक्षज्ञानकी कल्पना माननीय नहिं होसक्ती ॥

२—यदि उपनिषद्महावाक्यनसें आत्मसाक्षात्कार होसक्ता तो कठोपनिषद्में—

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्योनचक्षुषा ॥

अ० २ ॥ वल्ली ६ ॥ १२ ॥

अर्थ—वाक्यसें आत्मा नहिं प्रत्यक्ष होसक्ता और न मनसें न चक्षुसें प्रत्यक्ष होसकेहै मुण्डकउपनिषद्के—

नचक्षुषागृह्यते नापिवाचा ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

इसमन्त्रमें वाक्यसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव श्रुति भगवती क्युं किहती यदि आप ऐसे कहैं कि शब्दकी शक्तिवृत्ति सें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै शब्दकी लक्षणावृत्तिसें आत्मप्रत्यक्ष होताहै तो यिहभी आपका कथन समीचीन नहिं क्युंकि शक्ति वृत्ति लक्षणावृत्ति तो शब्दके अन्तर्गतहिहैं वाक्यसें आत्मसाक्षात्कारका अभावकथनतें शक्ति लक्षणा दोनोंवृत्तिओंसें आत्मप्रत्यक्षके अभावमें श्रुतिका तात्पर्य है यदि लक्षणासें आत्मसाक्षात्कारमें श्रुतिका तात्पर्य होता तो मन्त्रके पूर्वार्द्ध में वाक्यसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कथनकर्के उत्तरार्द्धमें लक्षणासें आत्मप्रत्यक्ष श्रुति भगवती प्रतिपादन कर्ती परन्तु उत्तरार्द्धमें ऐसे तो श्रुतिने नाहिंकहा किंतु

तंपश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥

ऐसे उत्तरार्द्धमें ध्यानसेंहि आत्मसाक्षात्कार श्रुतिभगवती नें बोधन कराहै ॥

३--यदि लक्षणावृत्तिसें साक्षात्कार होता तो ऐसे किसी उपनिषद्मन्त्रमें तो कहिते हेमित्र ऐसे तो किसीउपनिषद्में नहिं कहा इससें तुमारी उक्तकल्पना असत्यहिहै पुनः केई आचार्यों ने जो भागत्यागलक्षणा मानीहै सोभी वाक्यार्थज्ञानलिये विरोधके परिहारार्थमानीहै सो वाक्यार्थज्ञान तो परोक्षज्ञान हि होताहै इसीसें उक्त उपनिषदादिकोंमें वाक्यसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै तथा 'समाधिविना' योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै ॥

४--यदि उपनिषद्महावाक्यनके श्रवणसें साक्षात्कार हो सक्ता तो श्रवणसें अनन्तर निदिध्यासनका विधान उपनिषदादि ग्रन्थोंमें क्युंकर्ते यदि आप ऐसेकहें कि उपनिषद्महावाक्यनके श्रवणसें आत्मसाक्षात्कार होताहै परन्तु जिसपुरुषके आत्म साक्षात्कार हुएभी विपर्यय दोष निवृत्त नहिंहोवे तिसपुरुषको विपर्यय दोषकी निवृत्तिलिये निदिध्यासनकरणा कहाहै तो यिह साहसकथनभी अत्यन्तअयुक्तहै क्युंकि आधिष्ठानवस्तुके विशेष रूपका प्रत्यक्षज्ञानहुए विपर्यय कहींभी नहिं रहैसक्ता यदि आप यिह कहैं कि जैसे एकराजाको भस्मलिप्त अपने भरछुमन्त्रीका

प्रत्यक्ष हुएभी प्रेतभ्रम दूर नहिंहुआ तैसे प्रत्यक्षज्ञान हुएभी विपर्यय रहैसक्ताहै तो यिह अविचारित कथनभी समीचीन नहिं क्युंकि अधिष्ठानके इदंतासें सामान्यरूपका ज्ञान तो भ्रमका साधनहै अर अधिष्ठानके विशेषरूपका प्रत्यक्षज्ञान भ्रमका निवर्तकहै जैसे रज्जुके इदंतासें सामान्यरूपका (अयं) ऐसा प्रत्यक्षज्ञान हुए हि सर्पभ्रम होताहै अर 'इयंरज्जुः' ऐसा रज्जुके विशेषरूपका प्रत्यक्षहुए सर्पभ्रम निवृत्त होजावैहै अधिष्ठानके विशेषरूपका प्रत्यक्षज्ञानहुए भ्रम नहिं रहैसक्ता सर्वत्र भ्रमस्थल में ऐसेहि जानलेना अब विचारिये कि उक्त प्रेतभ्रमका अधिष्ठान कौनहै तो भरछुका मनुष्यशरीर हि प्रेतभ्रमका अधिष्ठान कहिनाहोगा राजाको भरछुका इदंतासें 'अयं' ऐसा प्रत्यक्षहुआ सो इदंतासें प्रत्यक्षज्ञान तो भ्रमका साधनहि था भस्मलिप्तहोनेसें अर विरुद्धमन्त्रिओं कथित प्रेतभावके संस्कारों सें भरछुके मनुष्यरूप विशेषरूपका

'अयं मनुष्यो भरछुः'

ऐसा प्रत्यक्षज्ञान नहिंहुआ इससें मनुष्यशरीररूप अधिष्ठानमें रज्जुमें सर्प भ्रमकी न्यांई

'अय प्रेतो भरछुः'

ऐसा भ्रमहुआ यदि राजाको भरछुके छायाआदि चिह्नोंसें मनुष्यरूप विशेषरूपका

'अयं मनुष्यो भरछुः'

ऐसा प्रत्यक्षज्ञान होता तो प्रेतभ्रम नहोता अर विरुद्ध मान्त्रिओंके कथनसें परोक्ष प्रेतभ्रम था तो वोभी निवृत्त होजाता परन्तु राजाको मनुष्यशरीररूप विशेषरूपका प्रत्यक्षज्ञान तो हुआहि नहिं इसतें तुहारादृष्टान्त प्रकरणमें प्रतिकूलहै 'अधिष्ठान के विशेषरूपका प्रत्यक्षज्ञानहुए विपर्ययदोष कवी कहींभी नहिं रहैसक्ता' यिह नियम अव्यभिचारीहै इसहेतुसें आत्मसाक्षात्कार हुएतें अनन्तर विपर्ययदोषकी निवृत्तिलिये निदिध्यासन कहाहै, यिह आपका साहसकथन अयुक्तहिहै विपर्यय, अध्यास, भ्रम, भ्रान्ति, आरोप, अविद्या, विपरीतभावना, यिह शब्द मिथ्याज्ञान के वाचकहैं ॥

वास्तवसें विचारिये तो विपर्ययका साक्षात्‌निवर्तक निदिध्यासन नहिंहोसक्ता किन्तु स्वपरिपक्वताजन्य आत्म-साक्षात्कारद्वारा हि विपर्ययका निवर्तक निदिध्यासन संभवेहै आत्माका प्रत्यक्षज्ञान हि विपर्ययका निवर्तक मुण्डकउपनिषद्‌में कहाहै देखिये—

भिद्यतेहृदयग्रन्थि श्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ।
क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥

मु० २ ॥ खण्ड २ ॥ ८ ॥

अर्थ—सो 'परावर' परमात्मा प्रत्यक्षहुए अनात्मचित्ता-

दिकोंमें आत्मभ्रान्तिरूप हृदयग्रन्थि टूट जातीहै और सर्वसंशय कटे जातेहैं इस आत्मदर्शीके कर्मक्षय होजाते हैं ॥

हेभ्रातः परोक्षज्ञानसें अपरोक्षभ्रमकी निवृत्ति नहिंहोती किन्तु अधिष्ठानके अपरोक्षज्ञानसें हि अपरोक्षभ्रमकी निवृत्ति होतीहै यिह नियम निर्विवाद हिहै । आत्मसाक्षात्कारका साधन रूप निदिध्यासनावस्थामें आत्मविषयक वृत्तिआं परोक्षज्ञानरूप होतीहैं इसहेतुसें सो परोक्षज्ञानरूप वृत्तिओंका प्रवाहरूप निदिध्यासन अपरोक्षअध्यासका साक्षात्‌निवर्तक नहिंहोसक्ता किंतु स्वपरिपक्वतारूप समाधिजन्य आत्मसाक्षात्कारद्वाराहि निदिध्यासन विपर्ययका निवर्तकहै ॥

देखो विवेकचूडामणिके—

अज्ञानहृदयग्रन्थे र्निशेःष विलयस्तदा ।
समाधिनाऽविकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम् ॥

॥ ३५३ ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

इस श्लोकमेंभी श्रीशङ्कराचार्य्योंने समाधिजन्यआत्मदर्शन हि विपर्ययका निवर्तक कहाहै ऐसे युक्तिप्रमाणोंसें विरुद्ध ‘आत्म प्रत्यक्ष हुएतें अनन्तर विपर्ययकी निवृत्तिलिये निदिध्यासन कहाहै’ यिह आपका कथन अयुक्त हिहै किंतु ध्यानरूप निदि

ध्यासन आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाका करणहै इसहेतुसें आत्मप्रत्यक्ष ज्ञानके उत्पादनलिये निदिध्यासनका कथनहै हेपाठक स्मरण करिये लिखचुकाहुं कि

तंपश्यतेनिष्कलंध्यायमानः--
अपिसंराधनेप्रत्यक्षानुमानाभ्याम्--
समाधिविशेषाभ्यासात्--
यद्योगेनात्मदर्शनम्--
समाधिनाऽविकल्पेन यदाऽद्वैतात्मदर्शनम्--
एवंह्यसौदृष्टोभवति श्रवणमननिदिध्यासन
साधनै र्निर्वर्त्तितैः ॥

इत्यादिक प्रमाणोंमें आत्मसाक्षात्कारालियेहि ध्यानयोग समाधिका निरूपणहै ॥

५--यदि महावाक्यरूपशब्दसें आत्मप्रत्यक्ष मानोगे तो

नासमाहितः--
अयोगीनैवजानाति--
समाध्यवस्थाया प्रत्यक्केनभानात्--

इत्यादिक उक्त नानाप्रबलप्रमाणोंसें विरोधहोगा क्युंकि शब्दोंका श्रवण तथा शब्दार्थोंका विचार तो व्युत्थानावस्थामें

होताहै अर उक्त उपनिषदादिक प्रबलप्रमाण तो समाधिअवस्था हुए समाधिअवस्थामेंहि आत्मसाक्षात्कार होता कहितेहैं समाधि अवस्थामें शब्दका श्रवणभी नहिंहोसक्ता तो तब श्रवणजन्य साक्षात्कार कहिना कैसे संभवेहै यदि आप विचारविशेषका नाम श्रवण कहें तोभी समाधिअवस्थामें ध्येयमात्राकारवृत्तिओं सें विलक्षण एकभीवृत्ति नहिंहोती तो तब महावाक्यनका विचार कैसे होसक्ताहै यदि ध्येयाकारवृत्तिसें विलक्षणवृत्ति होगी तब समाधिअवस्था नहिंरहैगी क्युंकि विलक्षणवृत्तिके व्यवधानरहित सदृशवृत्तिओंका प्रवाह 'निदिध्यासनका' ध्यानका लक्षणहै ऐसे ध्यानरूप निदिध्यासनावस्थामें ध्यातृध्यानकी कुछक स्फूर्ति रहेहै पुनः अभ्यासके क्रमसें जब ध्यातृध्यानकीभी स्फूर्ति नहिंरहै तब सो ध्यातृध्यानकीभी स्फूर्तिसें रहित ध्येयमात्राकारवृत्तिओंका प्रवाहरूप निदिध्यासनकी परिपाकावस्था समाधिपदका अर्थहै देखिये पञ्चदशीआदिक वेदान्तग्रन्थनमें समाधिका लक्षण कहा है—

ध्यातृध्यानेपरित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम् ।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयते ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

ब्रह्माकारमनोवृत्ति प्रवाहोऽहङ्कृतिंविना ।
सम्प्रज्ञातसमाधिःस्या द्ध्यानाभ्यासप्रकर्षतः ॥

अर्थ—ध्यातृकी स्फूर्तिरूप अहङ्कारसेंरहित ब्रह्माकार मन की वृत्तिओंका प्रवाहरूप संप्रज्ञातसमाधि ध्यानके अभ्यासकी अधिकतासें होवेहै पुनः सर्ववृत्तिओंका निरोधहुए संस्कारमात्र शेषकूं असम्प्रज्ञातसमाधि कहितेहैं समाधिसें इतरअवस्थाकूं व्युत्थानअवस्था कहेहैं ॥

६—यदि महावाक्यनके श्रवणसें साक्षात्कार होता तो भाष्यकारस्वामी श्रवणमात्रसें ब्रह्मसाक्षात्कारका अभाव क्युं कहिते देखिये—

यदैकत्वमेतान्युपगतानि तदा सम्यग्दर्शनम्-
नान्यथा श्रवणमात्रेण ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

७—यदि महावाक्यनके श्रवणसें प्रत्यक्षज्ञानहोता तो

तद्ब्रह्मविदोपदेशमनन ध्यानादिभिर्लभ्यते—
श्रुतेःशतगुणंविद्या न्मननंमननादपि ।
निदिध्यासंलक्षगुण मनन्तंनिर्विकल्पकम् ॥

इत्यादिक वाक्यनसें भाष्यकारस्वामी श्रवणमें साधनोंकी समाप्ति कहिते परन्तु भाष्यकारोंनें श्रवणमें साधनसमाप्ति नहिं कही किन्तु सांख्यरूप श्रवण मननसें लक्षगुण अधिकफल निदिध्यासनका प्रतिपादनकर्के निर्विकल्पसमाधिमेंहि साधन

समाप्ति कही है ॥

८—यदि शब्दसें सूक्ष्मतमआत्माका प्रत्यक्ष होसक्ता तो प्रकृति महत्तत्व पञ्चतन्मात्रा संस्कार अदृष्टादिक सूक्ष्मपदार्थोंका प्रत्यक्षभी शब्दसें हुआचाहिये ॥

पूर्वपक्षी—प्रकृतिअदृष्टादिकपदार्थ प्रत्यक्षयोग्य नहिंहै ॥

सिद्धान्ती—प्रकृतिअदृष्टादिक प्रत्यक्षयोग्य क्युं नहिं ॥

पूर्वपक्षी—अदृष्टादिक अनात्मपदार्थहैं इसहेतुसें प्रत्यक्ष योग्य नहिं हैं ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः घटपटकटादिकभी अनात्मपदार्थहैं इससें तुमारीरीतिसें तो घटपटकटादिकभी अनात्मपदार्थ होनेसें प्रत्यक्षयोग्य नहिं हुएचाहिये सो प्रत्यक्षयोग्यहैं ऐसे 'अनात्म पदार्थहोनेसें अदृष्टादिक प्रत्यक्षयोग्य नहिंहैं' यिह कथन तो अयुक्त हिहै ॥

पूर्वपक्षी—घटपटकटादिक ऐन्द्रियकहैं और प्रकृति अदृष्टादिक 'सूक्ष्महैं' अतीन्द्रियहैं इससें अदृष्टादिकपदार्थ प्रत्यक्ष योग्य नहिं हैं ॥

सिद्धान्ती—यदि अदृष्टप्रकृति महत्तत्वादिकपदार्थ सूक्ष्म होनेसें प्रत्यक्षयोग्य नहिं हैं तर्हि आत्मा तो अत्यन्तसूक्ष्महै यिह उपनिषदादिकोंमें प्रसिद्ध हिहै देखो कठोपनिषद्‌मेंभी

कहाहै—

अणोरणीयान्महतोमहीया-
नात्माऽस्यजन्तो र्निहितोगुहायाम् ॥

अ० १ ॥ वल्ली २ ॥ २० ॥

अर्थ—परमाणुआदि सूक्ष्म वस्तुतें अत्यन्तसूक्ष्म और पृथिवीआकाशादि महत्पदार्थतें अत्यन्तमहान् आत्मा इसप्राणि मात्रकी बुद्धिरूपगुहामें स्थितहै ॥

शङ्का—यदि आकाशादिमहत्पदार्थतें आत्मा अत्यन्त महान्है तो 'अणोरणीयान्' इसविशेषणसें परमाणुआदि सूक्ष्म पदार्थतें अत्यन्तसूक्ष्म कहना कैसे संभवेहै ॥

समाधान—सत्यहै कि आत्मा विभुहोनेसें पृथिवीआकाशादि सर्वमहत्पदार्थोंतें अत्यन्तमहान्है इसहेतुतें 'अणोरणीयान्' इसविशेषणमें 'अणुशब्दका' सूक्ष्मशब्दका अर्थ अल्पपरिमाण वाला नहिंजानना किंतु सूक्ष्मपदकाअर्थ अतीन्द्रियहै नेत्रादिक इन्द्रिय जिसपदार्थकूं विषय नहिं करसकें सो अतीन्द्रिय कहियेहै जैसे प्रकृति महत्तत्व अदृष्टादिकपदार्थोंकूं नेत्रादिइन्द्रिय विषय नहिं करसक्के इससें प्रकृतिआदिक पदार्थ अतीन्द्रियहैं ऐसे अतीन्द्रियपदार्थकूं सूक्ष्मपदार्थ कहितेहैं इसकथनसें यिहअर्थ सिद्धहुआ कि आकाशादिक सर्वमहत्पदार्थोंतें आत्मा अत्यन्त

महान्है अर परमाणुआदि सर्वसूक्ष्मपदार्थोंतें अतीन्द्रियपदार्थोंतें आत्मा 'अत्यन्तसूक्ष्महै' अत्यन्तअतीन्द्रियहै क्युंकिसूक्ष्मसमाधि अवस्थामेंभी सर्वान्तरआत्माका प्रत्यक्ष नहिं होता किंतु अत्यन्त सूक्ष्मसमाधिअवस्थामें सर्वान्तरआत्माका साक्षात्कार होताहै ॥

तात्पर्य यिहहै कि व्यवहित वा विप्रकृष्ट स्थूलपदार्थमें जो समाधि सो स्थूलसमाधि कहियेहै तिसस्थूलसमाधिअवस्था में तो जाका ध्यान कीयाहै तिस स्थूलपदार्थकाहि प्रत्यक्ष होताहै वो व्यवहित हो वा विप्रकृष्टहो परन्तु तब सूक्ष्मपदार्थोंका प्रत्यक्ष नहिंहोता ऐसे स्थूलसमाधिसें अनन्तर परमाणुपञ्चतन्मात्र अदृष्टादिक सूक्ष्मपदार्थोंविषयक जो समाधि सो सूक्ष्मसमाधि कहियेहै ऐसे सूक्ष्मसमाधिअवस्थामेंभी सर्वान्तरआत्माका प्रत्यक्ष नहिंहोता किंतु अत्यन्तसूक्ष्मसमाधिअवस्थामें सर्वांतर आत्माका साक्षात्कार होताहै इससें धर्माधर्म प्रकृति महत्तत्त्वादिक सर्व सूक्ष्मपदार्थोंतें आत्मा अत्यन्त सूक्ष्महै ॥

यदि प्रकृतिआदिक सूक्ष्मपदार्थोंका प्रत्यक्ष शब्दके श्रवण सें वा मननसें नहिंहोता तो सूक्ष्मतम आत्माका साक्षात्कार श्रवणसें वा मननसें कैसे होसकेहै किन्तु प्रकृतिअदृष्टादि सूक्ष्म पदार्थोंका प्रत्यक्ष सूक्ष्म समाधिसेंहि होताहै अर सूक्ष्मतम आत्मा का साक्षात्कार सूक्ष्मतमसमाधिसेंहि होताहै ॥

हेपाठक समाधिमें स्थूलता, सूक्ष्मता, अतिसूक्ष्मता तो

विषयकी स्थूलता सूक्ष्मताऽऽदिकोंकी दृष्टिसें जाननी ॥

पूर्वपक्षी--'अहम् अहम्' ऐसी स्फूर्तिहोनेतें अन्ध पंगु बधिरादिकोंकोभी अर्थात् सर्वजीवोंको आत्मा प्रत्यक्षहिहै तो फिर आत्माके प्रत्यक्षलिये निदिध्यासनकी प्रसंख्यानकी कुछ अपेक्षा संभवे नहिं ॥

सिद्धान्ती--यिह अविचारित कथनभी समीचीन नहिंहै क्युंकि--

१—अहंअहं ऐसी स्फूर्तिओंसें देहचित्तादिसम्पृक्त आत्मा प्रतीत होवेहै । शरीरचित्तादिकोंसें भिन्न निरवयव सूक्ष्मतम विभु आत्मा उक्तस्फूर्तिओंसें प्रतीत होवेनहिं यिह सर्वके अनुभव सिद्ध हिहै सो शरीरचित्तादिकोंसें मिश्रितआत्माकी प्रतीति तो 'अध्यासरूप' भ्रान्तिरूप होनेसें बंधकाहि कारणहै ॥

२—जिस सूक्ष्मतम विभु निरवयव आत्माके साक्षात्कार सें मोक्ष होवेहै सो आत्मा यदि सर्वको प्रत्यक्षहिहै तो वेद वेदान्त मोक्षशास्त्रादिकोंमें विधान किये विवेक वैराग्य शम दम समाधानादिक और श्रवण मनन निदिध्यासनादिक आत्म साक्षात्कारके सर्वसाधन व्यर्थहि होजाएंगे सो ऐसे कहनाभी आस्तिकजनोंको योग्य नहिं ॥

३—यदि सूक्ष्मतमआत्मा सर्वको प्रत्यक्षहिहै तो सर्वजीव

निरायाससैंहि मुक्तहुए चाहिये । सर्वजीव मुक्तहिहैं ऐसे यदि कहैं तो किसीजीवकाभी जन्म नहिं हुआचाहिये ॥

४—यदि सूक्ष्मतम आत्मा सर्वको प्रत्यक्षहिहै तो सर्व वादीओंके आत्मविषयक विवाद नहिंहुए चाहिये जैसे केई दृश्यमान स्थूलशरीरकूंहि आत्मा कहितेहैं और केई क्षणिक विज्ञानकूंहि आत्मा कहे हैं औरकेई इसस्थूलशरीरतें भिन्न आत्मा कूं अणु निरूपण कर्तेहैं । और केई मध्यमपरिमाणवाला आत्मा प्रतिपादनकरे हैं । औरकेई विभुआत्मा सिद्धकर्तेहैं इत्यादिक नानामतोंवाले नास्तिक आस्तिकजन परस्पर अपनीअपनी युक्तिओंसें नानाविवाद कर्तेहैं सो सर्वके प्रत्यक्षसिद्धवस्तुमें विवाद संभवे नहिं इससें यदि सूक्ष्मतम आत्मा सर्वको प्रत्यक्ष हिहै तो आत्माविषयक किसीका कोईएकभी विवाद नहिं हुआ चाहिये ॥

५—यदि सूक्ष्मतम आत्मा सर्वको प्रत्यक्षहिहै तो वेद पाठ यज्ञदानादि सत्कर्मोंका फल जो आत्मजिज्ञासा उपनिषदादिकोंमें कथनकरीहै सो कथन तथा निष्काम कर्मोंका अनुष्ठानभी व्यर्थहि होगा क्युंकि अज्ञातपदार्थविषयक जिज्ञासा संभवेहै पृत्यक्षवस्तुकी जिज्ञासा होवे नहिं यदि सूक्ष्मतम आत्मा सर्वको पृत्यक्ष हिहै तो आत्मजिज्ञासाकेहेतु सत्कर्मोंका अनुष्ठान और उपनिषदादिकोंमें आत्मजिज्ञासाके हेतु सत्कर्मोंका कथन

भी व्यर्थ क्युं नहिंहोगा 'वेदपाठ यज्ञादि सत्कर्मोंकर आत्म जिज्ञासा होतीहै' यिह यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्‌मेंभी कहाहै ॥

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ॥

अर्थ—देवादिकोंके द्रोहलिये जो असुरोंकीन्याई तप करें सो हानिकरहोनेसें नाशकतपहै और जो द्रोहसेंरहित कल्याणलिये तप करिये सो अनाशकतपहै वेदपाठकर यज्ञकर दानकर अनाशक तपकर 'ब्राह्मण' मुमुक्षुजन तिसपूर्वोक्त आत्मा कूं जाननेकी इच्छाकर्तेहैं अर्थात् वेदपाठ यज्ञ दान तप आदि सत्कर्मोंका फल आत्मजिज्ञासाहै इति ॥

६—आत्मसाक्षात्कारवाले योगिजनोंको सर्वान्तरआत्मा प्रत्यक्ष होताहिहै तथापि सर्वजीवोंको सूक्ष्मतमआत्मा प्रत्यक्ष नहिं है यिह यजुर्वेदकी कठोपनिषद्‌मेंभी कहाहै—

एष सर्वेषुभूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

श्रीभगवद्गीतामेंभी कहाहै—

नाहंप्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥

भ० ७ ॥ २५ ॥

अर्थ—योगमायासें आवृतहुआ मैं परमात्मा सर्वको प्रत्यक्ष नाहिंहुं इति ॥

इससें सर्वान्तर निरवयव आत्माके साक्षात्कारलिये प्रसंख्यानकी आवश्यकताहे ॥

वृत्तिप्रभाकरके अष्टमप्रकाशमें ब्रह्मतत्वज्ञानके करणके विचारमें तीन मत लिखेहैं सो देखिये—

१—तत्वज्ञानका करणरूप प्रमाण प्रसंख्यानहे यिह कितने ग्रन्थकारोंका मतहै ॥

२—भामतीकार वाचस्पतिका यह मतहै मनका सहकारी प्रसंख्यानहे ब्रह्मज्ञानका करण मनहै ॥

३—अद्वैतग्रन्थनका मुख्यमत यहहै निदिध्यासनजन्य एकाग्रता सहित मन सहकारीहै औ वेदान्तवाक्यरूप शब्द हि ब्रह्मज्ञानका करणहै देखो हेपाठक यहां पहिले मतमें तो प्रसंख्यान हि करणहै। द्वितीयमतमें प्रसंख्यानकूं सहकारी कारण मानाहै। तृतीयमतमेंभी निदिध्यासनजन्य एकाग्रता सहित मनकूं सहकारी कहनेसें अर्थात् निदिध्यासनरूप प्रसंख्यान सहकारी कहाहै इसप्रकार तीनोंमतोंमें ब्रह्मसाक्षात्कार

लिये प्रसंख्यान अवश्यं अपेक्षित हुआ इससें और व्यव. धानरहित साक्षात्साधन होनेसें 'प्रसंख्यानहि आत्मतत्व ज्ञानका करणहै' यिह पहिला मतहि समीचीनहै ॥

और जो वृत्तिप्रभाकरमें कहा कि षट्विधप्रमाणमें प्रसं‐ख्यान नहिंहै तिससें प्रसंख्यानमें प्रमाकी करणता संभवे नहिं सो यिह कथनभी समीचीन नहिं क्युंकि यथार्थज्ञानकूं प्रमा कहितेहैं अर समाधिजन्यज्ञान यथार्थहि होताहै इसीसें समाधि जन्यज्ञानकी 'ऋतम्भरा' संज्ञा शास्त्रोंमें प्रसिद्धहै अर्थ यिह ऋतम् कहिये सत्यअर्थकूंहि भरा कहिये धारणवाली है इसहेतुसें समाधि‐जन्य 'प्रज्ञाकी' ज्ञानकी ऋतम्भरा संज्ञाहै ऐसी ऋतम्भरासंज्ञा वाली प्रत्यक्षप्रमाका करण प्रसंख्यान शास्त्रोंमें तथा विद्वज्जनोंमें प्रसिद्धहिहै ऋतम्भरासंज्ञावती प्रत्यक्षप्रमाका करणहोनेसें समाधि रूप प्रसंख्यान प्रत्यक्ष प्रमाणहै ॥

बहुत क्या लिखूं हेमित्र सो समाधिरूप प्रत्यक्षप्रमाण तो परम्परासें अन्य सर्वप्रमाणोंका मूलहै क्युंकि समाधिरूप 'करणसें' प्रमाणसें ज्ञातहुए सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट, पदार्थोंकूं महर्षिजन ज्योतिषादि वेदाङ्गोंद्वारा अर वेदान्तयोगशास्त्र स्मृति आदि द्वारा वाच्यवाचकादिभावसें बोधनकर्तेहैं ॥

हेभ्रातः समाधिसें ध्यानयोगसें सूक्ष्मतम आत्माका साक्षात्कार होताहै योगविना आत्मसाक्षात्कार नहिंहोता इस

अर्थमें तो श्रुतिस्मृतिआदिक बहुतहि प्रबलप्रमाणोंकूं मैं लिख चुकाहुं अर 'त्रिगुणात्मक प्रकृति संस्कार अदृष्टादिकोंका प्रत्यक्ष भी ध्यानयोगसें होताहै' इसअर्थमेंभी प्रबलप्रमाणोंकूं मैं लिख चुकाहुं । बहुत क्या समाधिसें सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टपदार्थोंका भी प्रत्यक्ष होताहै । समाधिविना अन्यकिसीप्रमाणसेंभी सूक्ष्म व्यवहितविप्रकृष्टपदार्थका प्रत्यक्ष नहिंहोता इसहेतुसें सूक्ष्म व्यवहितविप्रकृष्टपदार्थ समाधिरूप प्रत्यक्षप्रमाणका असाधारण विषयहै ॥

हेमित्र यदि समाधिकर किसीपदार्थकाभी यथार्थज्ञान न होता तो यिह कहना योग्यथा कि 'षट्विधप्रमाणमें प्रसंख्यान नहिंहै इससें प्रसंख्यानमें प्रमाकी करणता संभवे नहिं' परंतु प्रसंख्यानमें तो सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्टपदार्थोंकीभी यथार्थज्ञान रूप प्रत्यक्षप्रमाकीकरणता प्रसिद्ध हिहै तो फिर 'प्रसंख्यानमें प्रमाकी करणता संभवे नहिं' यिह कथनकरणा तो अपना *निर्मूलकहठ प्रकट करणाहै । हेभ्रातः ज्योतिष वेदान्त स्मृति आदिसर्वप्रमाणोंका मूलहोनेसें अर सत्यअर्थविषयक होनेसें अर सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टपदार्थोंकीभी प्रत्यक्षप्रमाका करणहोनेसें प्रसंख्यान तो सर्वप्रमाणोंमें अग्रणीय प्रत्यक्षप्रमाण निर्णीत है ॥

---

* युक्तिप्रमाणरूप मूलसें रहित ॥

'निदिध्यासनजन्य एकाग्रतासहित मन सहकारी है औ वेदान्तवाक्यरूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करणहै' यिह जो तृतीय मतहै सो तो अतिअसंभवहिहै किसहेतुसें सुनिये—

१—इसीप्रकरणमें वहां लिखाहै कि 'वाक्यजन्यज्ञानतें अनन्तर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहिं' हेपाठक विचारिये कि वाक्य जन्यज्ञानसें प्रथम तो प्रसंख्यान होहि नहिंसक्ता क्युंकि अत्यन्त अज्ञातपदार्थके आकार एकवृत्तिभी नहिंहोती तो सर्वथाअज्ञात पदार्थविषयक वृत्तिओंका प्रवाहरूप निदिध्यासन अर ताकी परिपाकावस्थारूप प्रसंख्यान कैसे होसक्ताहै एवं वाक्यजन्यज्ञान तें प्रथम निदिध्यासनके असंभवसें निदिध्यासनजन्य एकाग्रता सहित मनरूप सहकारीका अभावहोनेसें तृतीयमत समीचीन नहिं ॥

२—विचारसागरके द्वितीयतरंगमें लिखाहै कि 'श्रवण दो प्रकारकाहै एकतो वेदान्तवाक्य औ श्रोत्रका संयोगरूपहै और दूसरा वेदान्तवाक्यका विचाररूपहै ज्ञानका हेतु प्रथम श्रवणहै दूसरा नहिं । वेदान्तवाक्यके विचाररूप श्रवणसें औ मननसें असंभावना दूरि होवेहै और निदिध्यासनसें विपरीतभावना दूरि होवे है' इसविचारसागरके लेखकूं हेपाठक देखिये यहां निदि-ध्यासनविना हि वेदान्तवाक्यरूपशब्दके श्रवणमात्रसें ज्ञान कहाहै और वृत्तिप्रभाकरमें निदिध्यासनजन्य एकाग्रतासहित

मन सहकारी कहाहै अर्थात् निदिध्यासन सहकृत वेदान्तवाक्य रूप शब्द ब्रह्मज्ञानका करण कहाहै इस वृत्तिप्रभाकरके लेखसें विचारसागरका लेख तो असत्य हि हुआ क्युंकि प्रथमश्रवणसें पहिले अश्रुतअज्ञातवस्तुमें तो निदिध्यासन हो हि नहिंसक्ता इससें वृत्तिप्रभाकरकी रीतिसें निदिध्यासनरूप सहकारीकारण के असंभवतें प्रथमश्रवणसें ज्ञानकथन तो असत्य हि हुआ और जो विचारसागरमें 'प्रथम श्रवणमात्रसें ब्रह्मज्ञान मानकर्के निदिध्यासनसें विपरीतभावना दूरि होवेहै' यिह लिखा सोभी असत्यहिहै क्युंकि—

तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः—
दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या--
ज्योतिःपश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने
नमः ॥
योगिनस्तंप्रपश्यन्ति—
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा—
यद्योगेनात्मदर्शनम्—
द्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्योनिदिध्यासितव्यः-
एवंह्यसौ दृष्टोभवति श्रवणमनन निदिध्यासन
साधनै र्निर्वर्तितैः ॥

इत्यादिक उक्त प्रबल प्रमाणोंसें और उक्त युक्तिओंसें ध्यानयोगरूप निदिध्यासन आत्मसाक्षात्कारकाहि साक्षात्साधनहै तिस आत्मसाक्षात्कारद्वारा विपर्ययका निवर्तकहै यिह पूर्व सिद्ध होचुकाहै और

नान्यथा श्रवणमात्रेण ॥

ऐसे उक्त भाष्यवाक्यसेंभी विरुद्धहोनेतें प्रथम श्रवणसें आत्मसाक्षात्कार कहना असत्यहै ॥

यदि वृत्तिप्रभाकरकी रीतिसें यिह कहो कि प्रथमश्रवणसें तो परोक्षज्ञान होताहै पुनः निदिध्यासनसें जन्य एकाग्रतासहित मनरूप सहकारीकारणहुए वेदान्तवाक्यके विचाररूप द्वितीय श्रवणसें अपरोक्षज्ञान होवेहै तो यिह अविचारितकथनभी समीचीन नहिं क्युंकि उक्त ध्यानरूपनिदिध्यासनजन्य एकाग्रताऽवस्थामें तो एकब्रह्मरूपध्येयमात्राकार वृत्तिओंसें अन्य एकभी विलक्षणवृत्ति नहिंहोती तो ऐसी दशामें वेदान्तवाक्यका विचार कैसे होसक्ताहै यदि वेदान्तवाक्यनका विचार करेंगे तो उक्त विशेषणविशिष्ट मनरूपसहकारीकारण नहिंरहैगा ॥

हेमित्र यिह तो निर्विवाद हि प्रसिद्धहै कि कर्ताके अर करणके विद्यमान होतेहि कार्य्य उदय होताहै जैसे नापित कुलालादिकर्ताके अर क्षुर चक्रादिकरणके विद्यमान होतेहि

मुण्डन घटादि कार्य उदय होवेहै। करणके न विद्यमानहोते कार्य उदय नहिंहोता जिसके नष्टहुए वा अनुत्पन्नहुए वा कार्य्योत्पत्तिदेशमें न विद्यमानहोते जो कार्य्य उदय होवे तिस कार्य्य का सो करण नहिंहोता यिह निर्विवादहि नियमहै ॥

हेप्रियपाठक अब चित्तकूं सावधानकर्कें विचारिये कि दीर्घकालअभ्याससाध्य दुःसाध्य निदिध्यासनसें प्रथम मनन मननके चिरंअभ्याससें प्रथम गुरुमुखसें उच्चारितहुए वेदान्त वाक्यरूप शब्द तो चिरके निवृत्त होचुकेहैं अर्थात् चिरके निवृत्त होनेतें अविद्यमानहुए वेदान्तवाक्यरूपशब्द अपरोक्षज्ञानका करण कैसे होसकेहैं विजातीयवृत्तिके व्यवधानरहित एकब्रह्मरूप ध्येयमात्राकार वृत्तिओंके प्रवाहरूप निदिध्यासनजन्य एकाग्रता दशामें शब्दका श्रवणभी संभवे नहिं तथा ब्रह्ममात्राकारवृत्तिसें विलक्षणवृत्तिका अभावहोनेतें वेदान्तवाक्यका विचाररूप श्रवण भी संभवे नहिं इससें ब्रह्मसाक्षात्कारका शब्द करण कहिना सर्वथा अयुक्तहै ॥

३—वृत्तिप्रभाकरके इसीप्रकरणमें लिखाहै कि 'वाक्य जन्यज्ञानतें अनन्तर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहिं' हेपाठक विचारिये कि वाक्यजन्यज्ञानसें प्रथम अश्रुत अज्ञातपदार्थविषयक निदिध्यासनरूप प्रसंख्यान होहि नहिंसक्ता तो वृत्तिप्रभाकरमें निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानके करणेका कौनसा शेष समय नियत

रखाहै इससे हेमित्र यही मत समीचीनहै कि प्रथम वेदान्त वाक्यजन्य परोक्षज्ञानसें अनन्तर प्रसंख्यानरूप करणसें हि ब्रह्मप्रत्यक्ष होताहै ॥

४—वृत्तिप्रभाकरमें लिखाहै कि 'शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहिं' इसअर्थमें श्रुतिका तात्पर्यहोवे तो ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन असंगतहोगा' सो यिह कथन भी अयुक्तहिहै क्युंकि ब्रह्मके परोक्षज्ञानका करण तो उपनिषद्हैं इससें उपनिषद्वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन संभवेहै जैसे उपासनाप्रतिपादकग्रन्थ अग्नि इन्द्र विष्णु शिवादि उपास्य देवतोंके अर तिनकी उपासनाके बोधकहैं तिनग्रन्थनसें उपास्य इन्द्रशिवादिदेवता वेद्यहैं परन्तु तिनग्रन्थनके वाक्यश्रवणसें वो विष्णुशिवादिदेवता प्रत्यक्ष नहिंहोते किन्तु प्रथम तिनग्रन्थनसें वोदेवता परोक्षतासें जानेजातेहैं पुनः उपासनाके अभ्याससें सो शिवादिदेवता प्रत्यक्ष होतेहैं तैसेहि प्रथम उपनिषदादिकोंके श्रवणसें ब्रह्म परोक्षतासें वेद्यहै पुनः निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप प्रसंख्यानसें ब्रह्मप्रत्यक्ष होवेहै ॥

५—वृत्तिप्रभाकरमें लिखाहै कि 'शब्दकी लक्षणावृत्तिसें ब्रह्मगोचरज्ञान होवेहै शक्तिवृत्तिसें ब्रह्मका ज्ञान शब्दसें होवेनहिं' इसी रीतिसें श्रुतिका तात्पर्यहै, सो यिह लेखभी समीचीननहिं क्युंकि देखिये अथर्ववेदकी मुण्डकउपनिषद्मेंभी कैसे कहा

है—

नचक्षुषागृह्यते नापिवाचा
नान्यैर्देवै स्तपसाकर्मणावा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्व
स्ततस्तुतंपश्यतेनिष्कलंध्यायमानः ॥

देखो यिह श्रुतिभगवती मन्त्रके पूर्वार्द्धमें वाक्यरूप शब्द सें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहैकर उत्तरार्द्धमें लक्षणावृत्तिसें ब्रह्मसाक्षात्कार नहिं कहिती किन्तु एकहि मन्त्रके पूर्वार्द्धमें वाक्य रूप शब्दसें आत्मप्रत्यक्षका अभाव कहैकर उसीमंत्रके उत्तरार्द्ध में ध्यानसेंहि आत्मसाक्षात्कार कहे है हेपाठक यदि लक्षणावृत्ति सें ब्रह्मज्ञानमें श्रुतिका तात्पर्य होता तो निर्भया श्रुतिभगवती मन्त्रके उत्तरार्द्धमें लक्षणावृत्तिसें ब्रह्मसाक्षात्कार क्युं न कहिती हेमित्र क्या उत्तरार्द्धमें लक्षणावृत्तिसें ब्रह्मसाक्षात्कार कहनेमें श्रुतिको किसीका भयथा ॥

बहुत क्या शब्दसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव तो उपनिषदोंमें बहुत जगे कहाहिहै परन्तु किसी उपनिषद्‌मेंभी लक्षणावृत्तिसें ब्रह्मसाक्षात्कार नहिं कथनकरा किन्तु बहुत उपनिषद् स्मृतिआदिकोंमें ध्यानयोग समाधिसेंहि आत्मसाक्षात्कार निरूपण कराहै अर केई श्रुतिस्मृतिआदिकोंमें योग

विना समाधिविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै सो श्रुति स्मृतिआदि अनेक प्रबल प्रमाण तो मैं लिखहि चुकाहुं इस हेतुसें वेदान्तवाक्यरूप 'शब्द तो आत्माके परोक्षज्ञानका करणहैं अर आत्मप्रत्यक्षज्ञानका करण तो प्रसंख्यानहिहै' इसी अर्थमें श्रुतिका तात्पर्य सिद्ध होताहै ॥

६—'शब्दमें परोक्षज्ञानके उत्पादनका सामर्थ्यहै शब्दसें अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति संभवे नहिं' हेपाठक यिहभी वृत्ति- प्रभाकरमें इसी प्रकरणमें स्पष्टहि लिखाहै तो फिर अतीन्द्रिय सर्वान्तरात्मा का प्रत्यक्ष शब्दसें कहना अत्यन्त अयुक्तहिहै ॥

पूर्वपक्षी—यिहभी तो वृत्तिप्रभाकरमें लिखाहै कि शास्त्रोक्तश्रवणपूर्वक सो ब्रह्मगोचर परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसें अपरोक्षज्ञान होवेहै जैसे केवलनेत्रका सूर्यादिकनके साक्षात्कारमें सामर्थ्य नहिंहै औ चञ्चल वा मलिन उपाधिके सन्निधानसेंभी सामर्थ्य नहिंहै औ निश्चलनिर्मल उपाधिसहकृत नेत्रमें सूर्यादिकनके साक्षात्कारका सामर्थ्यहै तैसे संस्कारविशिष्ट निर्मल निश्चल चित्तरूपी दर्पणके सहकारतें शब्द सेंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान संभवेहै ॥

सिद्धान्ती—ऐसीकल्पनाभी असत्यहिहै क्युंकि देखिये इसवृत्तिप्रभाकरके वाक्यमेंभी शास्त्रोक्त श्रवणकर अर्थात् शास्त्र

विधिसें श्रवणकर ब्रह्मगोचर परोक्षज्ञान हि कथन कराहै और विचारिये कि जब प्रथम गुरुमुखसें उच्चरितहुए वेदान्तवाक्य रूपशब्द परोक्षज्ञानकूं उत्पन्नकर्के नष्टहोचुकेहैं फिर बहुकाल मननकूं कर्के तदनन्तर दुःसाध्यनिदिध्यासनके दीर्घकाल अभ्यास सें जब चित्त एकाग्रतासहितहुआ ॥

तब तो शब्दसें ब्रह्मसाक्षात्कार कहना अत्यन्तअसत्यहै क्युंकि अनेकाग्रताऽवस्था हुएविना ऐसी एकाग्रताऽवस्थामें एकभी विजातीयवृत्ति नहिंहोती तो असंख्यात विजातीय वृत्तिओंसें होनेवाला गुरुसमीपगमन, गुरुजीका दर्शन, प्रार्थना, पदोंका श्रवणादि, कैसे होसकेहै तथा वेदान्तवाक्यरूप शब्दन के विचारकाभी तब असंभवहिहै बहुतक्या विजातीयवृत्तिके व्यवधानरहित ब्रह्माकार सजातीयवृत्तिओंके प्रवाहरूप निदि· ध्यासनसें जन्य एकाग्रतादशामें तो शब्दका श्रवणभी नहिं होनेसें ऐसे एकाग्रचित्तमें तो शब्दसें परोक्षज्ञानभी नहिं हो सक्ता ॥

हेपाठक निर्मल निश्चल जलदर्पणादिउपाधिके संनिधान सें नेत्रमें सूर्यके दर्शनकी सामर्थ्य होवेहै परन्तु नेत्रसें संयोग सम्बन्धरहित जलदर्पणादि उपाधिसें तो नेत्रमें सूर्यसाक्षात्कार का सामर्थ्य नहिंहोता इसीप्रकार हेभ्रातः निदिध्यासनजन्य एकाग्रतादशामें विजातीयवृत्तिका अभाव होनेसें तब निर्मल

निश्चल चित्तरूपीदर्पणका शब्दसें सम्बन्धहि नहिंहोता इसहेतु तें दार्ष्टान्तसें उक्त दृष्टान्त सर्वथा प्रतिकूलहै ॥

आश्चर्यहै आश्चर्यहै कि आप हि लिखते हैं कि 'शब्दमें परोक्षज्ञानके उत्पादनका सामर्थ्यहै शब्दसें अपरोक्षज्ञानकी उत्पत्ति संभवे नहिं' अर निदिध्यासनजन्य एकाग्रतादशामें शब्द के श्रवणादिकोंकाभी असंभवहै ऐसीदशामें आपहि अपरोक्षज्ञानमें अशक्त कहेहुए सोभी अविद्यमान शब्दसें सूक्ष्मतम ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान मानना अर जिस समाधिरूप प्रसंख्यानमें अतीन्द्रियादि सर्वपदार्थोंके अपरोक्षज्ञानके उत्पादनका सामर्थ्य वेदशास्त्रोंमें तथा विद्वज्जनोंमें प्रसिद्धहिहै ऐसे निदिध्यासनकी परिपाका-वस्थारूप विद्यमान प्रसंख्यानकूं ब्रह्मसाक्षात्कारका करण नहिं मानना क्या यिह दुराग्रह नहिं है ॥

७—और जो वृत्तिप्रभाकरमें लिखाहै कि होमकूं स्वर्ग साधनता श्रुतिमें कहीहै द्वितीयक्षणमें विनाशीहोमकूं कालांतर भावि स्वर्गकी साधनता संभवे नहिं यातें स्वर्गसाधनताकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतें जैसे अपूर्वकी सिद्धि होवेहै तैसे ब्रह्मज्ञानतें अध्यासरूप सकलदुःखकी निवृत्ति श्रुतिमें कहीहै औ कर्तृत्वादिक अध्यास अपरोक्षहै तिस अपरोक्षअध्यासकी निवृत्ति परोक्षज्ञानतें संभवे नहिं अपरोक्षज्ञानतेंहि अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति होवेहै यातें अपरोक्षअध्यासकी निवृत्तिकी

अनुपपत्तिसें प्रमाणांतरके अगोचरब्रह्मका शब्दसें अपरोक्षज्ञान सिद्ध होवे है जैसे श्रुतार्थापत्तिसें अपूर्वकी सिद्धि होवे है तैसे शब्दजन्य ब्रह्मकेअपरोक्षज्ञानकी सिद्धिभी श्रुतार्थापत्तिसें होवे है ॥

ऐसी यिह श्रुतार्थापत्तिकी रचनाभी असती हिहै क्युंकि श्रुति स्मृतिआदिकोंसें विरुद्धहै तथा युक्तिओंसें विरुद्धहै तथाहि प्रकृति आदि सर्व अतीन्द्रियपदार्थोंकाभी प्रत्यक्ष समाधिसें योगिजनोंको होताहै प्रकृतिआदि किसी एक अतीन्द्रियवस्तुकाभी प्रत्यक्ष समाधिविना शब्दादिकोंसें नहिं होसक्ता तो सूक्ष्मतम सर्वान्तर ब्रह्मकाप्रत्यक्ष शब्दसें कैसे होसकेहै इत्यादियुक्तिओंसें विरुद्धहै तथा केई श्रुतिस्मृतिआदि प्रबलप्रमाण समाधिविना योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहितेहैं और केई श्रुतिआदिकोंमें वाक्यरूपशब्दसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कथनकर्के ध्यानसें समाधिसें आत्मसाक्षात्कार कहाहै सो ऐसे श्रुतिस्मृतिआदिक बहुतहि प्रमाण प्रमाणप्रकाशमें मैं लिखचुकाहुं सो यदि विस्मृतहुएहैं तो फिर देखलीजिये ॥

ऐसे युक्तिओंसें प्रबलप्रमाणोंसें समाधिकरहि ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान सिद्ध होताहै शब्दसें परोक्षज्ञान होताहै वाक्यरूप शब्दसें ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान नहिंहोता इसहेतुसें समाधिरूप प्रत्यक्षप्रमाणसें भिन्न किसी प्रमाणान्तरसेंभी ब्रह्मप्रत्यक्ष नहिं होनेतें जैसे श्रुतार्थापत्तिसें अपूर्वकी सिद्धिहोवेहै तैसे प्रसंख्यान

जन्य ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानकी सिद्धि श्रुतार्थापत्तिसैंभी होवेहै ॥

यदि आप कहैं कि आत्माका औपनिषदविशेषण श्रुतिमें कहाहै तो हेमित्र इस औपनिषदविशेषणमें कहीं अपरोक्षज्ञान अर्थवाले दृशधातुका वा ईक्षधातुका क्रियापद तो नहिंहै अर नियत होभी नहिंसक्ता इससें औपनिषदविशेषणकी यथायोग्य व्यवस्था चतुर्थअङ्कके उत्तरमें लिखचुकाहुं वो फिर देख लीजिये ॥

हेपाठक जिसमें प्रत्यक्षज्ञानार्थक क्रियापदभी नहिंहै अर नियत होभी नहिंसक्ता अर भाष्यकारभी ताका उपनिषद्वेद्यहि अथ कर्तेहैं अपरोक्षज्ञान अर्थ नहिंकर्ते ऐसे एक औपनिषद विशेषणसें उक्तश्रुतिस्मृति सूत्र भाष्यादि प्रमाणोंके प्रबलप्रवाहकूं कौन आस्तिकपुरुष उल्लंघन करसक्ताहै जिन श्रुतिस्मृतिआदि प्रमाणोंमें अपरोक्षज्ञानअर्थवाले 'पश्यते पश्यति दृश्यते दर्शनम् ईक्षते' इत्यादिक क्रियापद स्पष्टहिहैं ॥

हेप्रियपाठक उक्त युक्तिओंसें अर श्रुतिस्मृतिआदि प्रबल प्रमाणोंसें यिहहि अर्थ सिद्धहोआ कि वेदान्तवाक्यनसें आत्माका परोक्षज्ञानहिहोताहै तिनसें अपरोक्षज्ञान नहिंहोता किन्तु वेदांत वाक्यनसें श्रवणकिये परमात्मामें मननसें संशयरहित होकर निदिध्यासनके अभ्याससें निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप

प्रसंख्यानसें हि आत्मसाक्षात्कार होताहै इसहेतुसें आत्माकी प्रत्यक्षप्रमारूपपक्षमें प्रसंख्यानेतरकरणाजन्यत्वरूप साध्यका व्यभिचाररहितभाव उक्तयुक्तिप्रमाणोंसें सिद्धहै इसहेतुसें उक्त अनुमानमें बाधितहेत्वाभास नहिं किंतु निर्दोष सत् हेतुहै ॥

यदि आप ऐसे कहैं कि निजरूपहोनेसें आत्माका साक्षात्कार वेदांतवाक्यनके श्रवणमात्रसें वा मननसें सुखसें हि होसकेहै तो यिह कथनभी असंभवहिहै क्युंकि—

१—यदि आत्मसाक्षात्कार श्रवणमात्रकर वा मननकर सुखसेंहि होसक्ता तो अन्तःकरणके चञ्चलतारूप विक्षेपदोषकी निवृत्तिलिये जो नानाउपासनाका विधान उपनिषदादिकोंमें कियाहै तिसकी क्या आवश्यकता थी ॥

२—यदि आत्मसाक्षात्कार श्रवणमात्रकर वा मननकर सुखसें हि होसक्ता तो आत्मसाक्षात्कारलिये वैराग्य शम दम समाधान उपरति तितिक्षा निदिध्यासन इत्यादि दुःसाध्य साधनोंका विधान वेदान्तग्रन्थोंमें क्युं किया ॥

३—यदि आत्मसाक्षात्कार श्रवणमात्रकर वा मननकर सुखसें हि होसक्ता तो उपनिषदोंमें आत्माका दुर्दर्श विशेषण और आत्मसाक्षात्कारका दुर्गम विशेषण क्युं कहा यजुर्वेदकी कठोपनिषद्मेंभी आत्माका दुर्दर्श विशेषण कहाहै देखो—

तंदुर्दर्शंगूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गव्हरेष्ठंपुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेनदेवं
मत्वाधीरोहर्षशोकौजहाति ॥

अर्थ पूर्व लिखचुकाहुं ॥

देखिये इसमन्त्रके पूर्वार्द्धमें आत्माकूं दुर्दर्श कहैकर उत्तरार्द्धमें योगसेंहि आत्मसाक्षात्कार कहाहै किसी लक्षणावृत्ति सें आत्मसाक्षात्कार नहिंकहा अर इसमन्त्रपर जो शांकरभाष्य और गोपालेन्द्रयतिकी टीकाहै सोभी मैं प्रथमप्रकाशमें लिख चुकाहुं ताकूं फिर देखलीजिये ॥

यजुर्वेदकी कठोपनिषद्में आत्मसाक्षात्कारका दुर्गम विशेषण कहाहै देखिये—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत् कवयोवदन्ति ॥

अ० १ ॥ वल्ली ३ ॥ १४ ॥

अर्थ—हेमनुष्या अविद्यारूपनिद्रासें सोएहुए तुम 'उठो' आत्मज्ञानकी तर्फ होवो 'जागो' सर्वअनर्थोंकाबीज अविद्यारूप घोरनिद्राका क्षयकरो श्रेष्ठआचार्य्योंकूं प्राप्तहोकर सर्वान्तर आत्मा

कूं जानो *क्षुरकी धार जैसे 'दुरत्यया' चरणोंसें दुर्गमनीया होतीहै तैसे आत्माके प्रत्यक्षज्ञानरूप मार्गकूं विद्वज्जन 'दुर्गम' दुःसम्पाद्य कहितेहैं इसका अभिप्राय श्रीशङ्कराचार्य्यस्वामी यिह लिखतेहैं देखो--

ज्ञेयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तद्विषयस्य ज्ञानमार्गस्य दुःसम्पाद्यत्वं वदन्तीत्यभिप्रायः ॥

अर्थ—ज्ञेयआत्मा अतिसूक्ष्महै इससें तिस आत्माके ज्ञान रूपमार्गकूं विद्वज्जन दुःसम्पाद्य कहितेहैं यिह मन्त्रका अभिप्राय है ॥

दुःखसें साधनोंके अतिकष्टसें सम्पादन होवे जिसका सो दुःसम्पाद्य कहियेहै ॥

ऐसे उपनिषदादिकोंमें आत्मा दुर्दर्श कहिनेसें अर आत्म ज्ञानरूप मार्ग दुःसम्पाद्य कहिनेसें आत्मसाक्षात्कार श्रवणकर वा मननकर सुखसें नहिं होसक्ता किन्तु दुःसाध्य निदिध्यासन के अभ्यासजन्य समाधिसें हि होताहै यिह सिद्धहुआ इससें आत्मप्रत्यक्षप्रमाका करण प्रसंख्यानहिहै ॥

पूर्वपक्षी—आप हि कहैचुकेहैं कि अश्रुतअज्ञात पदार्थमें निदिध्यासन नहिं होसक्ता किंतु वेदान्तवाक्यनसें परमात्माके

---

* उस्तराकी

परोक्षज्ञानहुएसैं पश्चात् निदिध्यासनके अभ्याससैं समाधिहोताहै यातैं परम्परासैं समाधिका कारणभी शब्दहै तातैं वेदान्त वाक्यरूप शब्द आत्मसाक्षात्कारका करण कहिना संभवेहै ॥

सिद्धान्ती—जो परम्परासैं कारणहोवे सो करण नहिंहोता किंतु जो व्यवधानरहित साक्षात्साधनहोवे सो करण कहियेहै आत्मप्रत्यक्षप्रमाका व्यवधानरहित साक्षात्साधन समाधिहिहै इससैं आत्मप्रत्यक्षप्रमाका करण प्रसंख्यान हि संभवेहै ॥

पूर्वपक्षी—जहां अपरोक्षके योग्य विषयहोवे अर शब्दभी ताकूं अपरोक्षतासैं बोधनकरे अर वक्ताका तात्पर्यभी अपरोक्षता मैं होवे तहां तो शब्दसैंभी अपरोक्षज्ञान होवेहै और अन्यत्र शब्दसैं परोक्षज्ञानहोताहै जैसे 'दशम तूंहै' इस शब्दसैं दशम का अपरोक्षज्ञान होवेहै तैसे वेदान्तवाक्यसैं आत्मप्रत्यक्ष होता है ॥

सिद्धान्ती—यिह साहसकथनभी समीचीन नहिं क्युंकि शब्दमैं तो स्ववाच्यवस्तुके अपरोक्षज्ञान जननका सामर्थ्यहि नहिंहै किंतु शब्दमैं तो स्ववाच्यार्थविषयक परोक्षज्ञानके हि उत्पादनकी शक्तिहै इससैं शब्दसैं तो किसीवस्तुकाभी प्रत्यक्ष नहिंहोता जैसे किसीपुरुषके अग्रे निरावृत विल्वफल स्थितहै अर तिसपुरुषकी दृष्टि अन्यत्रहै तिस पुरुषको 'इदं विल्वफलम्' ऐसे कोई यथार्थवक्ता कथनकरे तो यहां अग्रस्थित निरावृत

विल्वफल प्रत्यक्षके योग्यहै और उक्त शब्दभी 'इदंतासें' अपरोक्षतासें बोधनकरेहै अर इदंतासें बोधनकरणेतें वक्ताका तात्पर्यभी अपरोक्षतामेंहै तोभी तिसपुरुषको उक्तशब्दके श्रवणसें तिस विल्वफलका प्रत्यक्ष नहिंहोता किंतु उक्त शब्दसें तो विल्व के सामान्यरूपकूं विषयकरणवाला परोक्षज्ञानहि होवेहै तदनंतर जब अन्यतर्फसें दृष्टिकूं हटाकर सोपुरुष तिस विल्वमें दृष्टि करेहै तबहि तिसपुरुषको नेत्रइन्द्रियद्वारा तिसविल्वका प्रत्यक्ष होताहै जब तक तिस निरावृत विल्वमें दृष्टि नहिंकर्ता तबतक तिस श्रोतापुरुषको तिस निरावृतविल्वका शब्दके श्रवणसेंहि प्रत्यक्ष नहिं होता और तुमारी रीतिसें तो तिसविल्वमें दृष्टिदेनेसें विना 'इदं विल्वफलम्' इसशब्दके श्रवणसेंहि तिसश्रोतापुरुषको तिसविल्व का प्रत्यक्षज्ञान हुआ चाहिये क्युंकि यहां अग्रस्थित निरावृत विल्वफलरूप विषयभी प्रत्यक्षयोग्यहै अर ताकूं उक्तशब्दभी अपरोक्षतासें बोधनकरेहै अर अपरोक्षतासें बोधनकरणेतें वक्ता का तात्पर्यभी अपरोक्षतामेंहै इससें तुमारी रीतिसें तो तिस विल्वमें दृष्टि दिये विनाहि तिस विल्वका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये अर होता नहिं हेपाठक यदि शब्दमें अपरोक्षज्ञानके जननकी शक्ति होती तो तिस निरावृत विल्वमें नेत्रोंकीदृष्टि दियेविना उक्त शब्दके श्रवणसेंहि श्रोताको तिसविल्वका प्रत्यक्ष होता नेत्रोंकी दृष्टि दियेविना तिस विल्वका प्रत्यक्ष नहिंहोता तथा 'इदं मधुरंफलम्' 'इदं सुरभि पुष्पम्' इत्यादि शब्दोंसेंभी मधुरता

सुगंधादिकोंका प्रत्यक्ष नहिंहोता किंतु परोक्षज्ञानहि होवेहै इससें शब्दमें अपरोक्षज्ञानके जननकी शक्ति नहिं एवंहि अग्र स्थित प्रत्यक्षयोग्य घट पट कट आमलकादि कोई पदार्थहोवे किसीकाभी शब्दसें प्रत्यक्ष नहिंहोता किंतु सर्वत्र शब्दसें तो सामान्यरूपविषयक परोक्षज्ञान हि होताहै तदनन्तर जब सो श्रोतापुरुष तिस श्रुतार्थमें दृष्टि देवेहै तब तिस श्रुतार्थका प्रत्यक्ष होताहै ऐसे प्रत्यक्षयोग्य बिल्वफलादि स्थूलपदार्थोंकाभी प्रत्यक्ष ज्ञान यदि शब्दसें नहिंहोता तो सूक्ष्मपदार्थोंका अर सूक्ष्मतम आत्माका प्रत्यक्ष शब्दसें कैसे होसकेहै इसहेतुसें हेमित्र शब्दसें प्रत्यक्षज्ञान कहना समीचीन नहिं ॥

पूर्वपक्षी—घटपटकटादिक ऐन्द्रियक पदार्थहैं इंद्रियग्राह्य पदार्थोंका प्रत्यक्ष शब्दसें नहिं होसक्ता ॥

सिद्धान्ती—यदि इन्द्रियग्राह्यवस्तुका प्रत्यक्ष शब्दसें नहिं होसक्ता तो तुमारा दशमदृष्टान्तभी इन्द्रियग्राह्यहै तिसका प्रत्यक्ष भी शब्दसें नहिंहोता ॥

हेभ्रातः उक्त घटपटकटादिक दृष्टान्तोंमें आपने कहा कि इन्द्रियग्राह्यपदार्थका प्रत्यक्ष शब्दसें नहिं होसक्ता तो क्या अतीन्द्रियपदार्थका प्रत्यक्ष शब्दसें होताहै तो प्रकृति महत्तत्व चित्त संस्कारादि अतीन्द्रियपदार्थोंका प्रत्यक्ष शब्दसें हुआ

चाहिये आश्चर्यहै कि हेभ्रातः अतीन्द्रियवस्तुकाभी प्रत्यक्ष शब्द सें नहिंहोता तथा ऐन्द्रियकपदार्थकाभी प्रत्यक्ष शब्दसें नहिंहोता तो फिर परिशेष किसका प्रत्यक्ष शब्दसें होवेहै अतीन्द्रिय अर ऐन्द्रियकपदार्थसें भिन्न तो कोई पदार्थ नहिंहै तिन उभयविध पदार्थोंका प्रत्यक्ष शब्दसें नहिंहोता इससें शब्दतें किसीकाभी प्रत्यक्ष नहिंहोता ॥

'दशम तूंहै' इसशब्दसें प्रत्यक्षज्ञान कथनकर्तें वादीसें अब पूछा चाहिये कि यिह उक्त दृष्टान्त वादीप्रतिवादी दोनोंके निर्विवाद प्रसिद्धहिहै वा काल्पनिकहै निर्विवाद प्रसिद्ध नहिंहै तिनमें प्रथमपक्ष तो समीचीन नहिं क्युंकि किसदेशमें किसनदी सें कौनकौन मनुष्य पारहुए यिह किसी वादी प्रतिवादीके प्रसिद्ध नहिंहै अर यदि वेदान्तग्रन्थनमें यिह दृष्टान्त लिखतेहैं तो उक्त शब्दसें परोक्ष अपरोक्षज्ञानमें उत्तरप्रत्युत्तरसें विवादभी लिखाहै इससें निर्विवाद नहिंहै यदि द्वितीयपक्ष कहो तो जो वादिप्रतिवादिके निर्विवाद प्रसिद्ध नहिंहै किंतु विवादग्रस्तहै काल्पनिकहै वो दृष्टान्त नाहिंहो सक्ता किन्तु जो दोनोंके निर्विवाद प्रसिद्ध होवे सो दृष्टान्त कहियेहै जैसे धूम वह्निकी व्याप्तिमें पाकस्थान दृष्टान्तहै सो वादीप्रतिवादी दोनोंने पाक स्थानमें धूमहोते अग्निके अर अग्निके अभावहुए धूमाभावके बहुवार देखनेसें धूमवह्निकी व्याप्तिमें पाकस्थान निर्विवाद प्रसिद्ध

होनेसें दृष्टान्त दिया जाताहै ऐसा यिह आपका वास्तव दृष्टान्त नहिं है किन्तु काल्पनिकहै विवादग्रस्तहै ऐसे दृष्टान्तसें कोई अर्थ सिद्ध नहिंहोसक्ता इससें उक्त दृष्टान्त समीचीन नहिंहै ॥

तथापि अब ताके विचारलियेभी चित्तकूं सावधान कीजिये नदीसें पारहुए दशमनुष्योंमें एकने गणन किया तो नव शरीरोंकूं गणा और दशम निजशरीरकूं नहिं गणा तब एक दशमशरीरके वहनका भ्रमहुआ अर्थात् 'एक दशममनुष्य नदीमें वह गिया' ऐसा भ्रमहुआ ॥

अब विचार कीजिये कि यिह उक्तभ्रम परोक्षभ्रमहै वा अपरोक्षभ्रमहै तिनमें यिह अपरोक्षभ्रम तो नहिंहै क्युंकि जैसे 'इदं रजतम्' इस अपरोक्षभ्रमका विषय मिथ्यारजत प्रत्यक्ष भासेहै और 'अयंसर्पः' इस अपरोक्षभ्रान्तिका विषय मिथ्यासर्प भी अपरोक्ष भासेहै इसीप्रकार सर्वत्र अपरोक्षभ्रमका मिथ्या विषय अपरोक्ष भासेहै और 'एक दशम नदीमें वह गिया' इस भ्रमका विषय तो कहीं प्रत्यक्ष भासेनहिं इससें यिह परोक्षभ्रम है 'यिह दशम नदीमें डूबके मराहै' ऐसा भ्रम होता वा 'यिह मैं दशम नदीमें डूबाहुं' ऐसा भ्रम होता तो अपरोक्षभ्रम होता सो ऐसा भ्रम तो दशमको होता नहिं इससें 'एक दशम नदीमें वह गिया' यिह परोक्षभ्रमहै परोक्षभ्रम परोक्षज्ञानसेंभी दूरहोताहै तदपि किसी अन्यमनुष्यनें नेत्रसें वा अंगुलीस्पर्शसें गणतिकर्के

किहा कि 'दशम तूंहैं' इसशब्दके श्रवणमात्रसें दशमका अपरोक्ष ज्ञान होवेहै ऐसे कथनकर्ते वादीसें यिह पूछा चाहिये कि उक्त वाक्यके श्रवणसें तिस दशम भ्रांतपुरुषको निजशरीरका प्रत्यक्ष ज्ञान होताहै अथवा निजशरीरमें दशमत्वसंख्याका प्रत्यक्षज्ञान होवेहै वा दशमत्वसंख्याविशिष्ट दशमशरीरका प्रत्यक्ष होताहै इनमें प्रथमपक्ष तो समीचीन नहिं क्युंकि अन्ध पंगु बधिरादि पर्यन्त सर्वजीवोंको जाग्रत् अवस्थामें निजनिजशरीर प्रत्यक्षहि होवेहै इससें उक्त शब्दके श्रवणसें प्रथम भ्रमकालमेंभी तिस दशमको स्वशरीर प्रत्यक्षहि था यदि भ्रमकालमें तिस दशम मनुष्यको निजशरीर प्रत्यक्ष न होता तो तिस दशमको 'मैं नहिं हुं' ऐसा भ्रम हुआ चाहिये वा 'मैं दशम नदीमें वह गिया' अथवा 'मेरा शरीर दशम नदीमें वह गिया' ऐसा भ्रम हुआ चाहिये सो ऐसा भ्रम तो होवेनहिं इससें उक्त शब्दके श्रवणसें पहिलेहि स्वशरीर प्रत्यक्ष होनेसें उक्त शब्दसें तिस दशमको निजशरीरका प्रत्यक्ष कहना संभवे नहिं ॥

यद्यपि तिस दशमको स्वशरीर तो प्रथम हि प्रत्यक्षथा तथापि 'दशम तूंहैं' इस शब्दके श्रवणसें तिस दशमको निज शरीरमें दशमत्वसंख्याका प्रत्यक्षज्ञान होवेहै यिह द्वितीयपक्ष कहो तो यिह द्वितीयपक्षभी असंभवाहिहै क्युंकि नेत्रइन्द्रियसें वा त्वगिन्द्रियसें पार्थिवपदार्थोंकी संख्याका प्रत्यक्षज्ञान होताहै शब्दसें तो पार्थिवपदार्थोंकी संख्याका प्रत्यक्ष कबीभी कहींभी

नहिंहोता जैसे 'यिह त्रयोदश गुंजाहैं' इसवाक्यके श्रवणसें गुंजा की त्रयोदशसंख्याका अपरोक्षज्ञान नहिंहोता किन्तु उक्तवाक्यके प्रभावसें गुञ्जाकी त्रयोदशसंख्याका परोक्षज्ञान होवैहै तदनन्तर संख्याके अपरोक्ष निश्चयलिये पुरुष नेत्रोंसें वा अंगुलीस्पर्शसें तिन गुञ्जाका गणन करे है तब नेत्रोंसें वा अंगुलीआदिकोंके स्पर्श सें गुञ्जाकी त्रयोदशसंख्याका प्रत्यक्षहोवे है ऐसेहि यिह पांच घट हैं यिह सप्त वराटकाहैं यिह अष्ट मनुष्यहैं यिह दश आमलकहैं इत्यादिशब्दोंके श्रवणसेंभी घटादिकोंकी संख्याका प्रत्यक्षज्ञान नहिंहोता किन्तु उक्तशब्दोंके सामर्थ्यसें घटादिकोंकी संख्याका परोक्षज्ञानहि होवैहै तदनन्तर संख्याके अपरोक्षनिश्चय वास्ते पुरुष नेत्रोंसें वा अंगुलीआदिकोंके स्पर्शसें जब घटादिकोंका गणन करेहै तबहि तिस पुरुषको नेत्रोंसें वा हस्तादिकोंके स्पर्श सें घटादिकोंकी संख्याका अपरोक्षज्ञानहोवैहै शब्दके श्रवणसें तो पार्थिव गुञ्जा घट शरीरादिकोंकी संख्याका प्रत्यक्षज्ञान कबीभी कहींभी नहिंहोता इससें 'दशम तूंहैं' इस उक्तशब्दसेंहि दशमत्व संख्याका अपरोक्षज्ञान कहना असंभवहै ॥

'दशम तूंहैं' इसशब्दके श्रवणसें दशमत्वसंख्याविशिष्ट दशमशरीरका प्रत्यक्ष होवे है यिह तृतीयपक्ष कहो तो यिह तृतीयपक्षभी अयुक्तहिहै क्युंकि विशेषणके प्रत्यक्षहुए विना विशिष्टका प्रत्यक्षज्ञान होवेनहिं जैसे 'नीलोघटः' यहां नीलरूप

विशेषणके प्रत्यक्षहुए विना नीलरूप विशिष्ट नीलेघटका प्रत्यक्ष संभवे नहिं तैसेहि दशमत्वसंख्यारूप विशेषणके प्रत्यक्षहुए विना दशमत्वसंख्याविशिष्ट दशमशरीरका प्रत्यक्षज्ञान संभवे नहिं अर 'दशम तूंहै' इसशब्दके श्रवणसें दशमत्वसंख्याका प्रत्यक्षज्ञान होता नहिं यिह पूर्व सिद्ध होचुकाहै। तात्पर्य यिहहै कि तिस भ्रान्तदशममनुष्यको निजशरीर तो प्रथम हि प्रत्यक्षहै अर 'दशम तूंहै' इस शब्दसें संख्याका प्रत्यक्षज्ञान होतानहिं इससें दशमत्वसंख्याके प्रत्यक्षहुएविना दशमत्वसंख्याविशिष्ट दशमशरीरका प्रत्यक्षज्ञान उक्तशब्दसें कहना अयुक्तहै किन्तु जैसे उक्त दृष्टान्तोंमें उक्तशब्दोंसें गुञ्जाघटादिकोंकी संख्याका परोक्षज्ञानहिहोवेहै तैसे 'दशम तूंहै' इसशब्दके श्रवणसें तिस भ्रांतमनुष्यको निजशरीरमें दशमत्वसंख्याकाभी परोक्षज्ञानहि होताहै तदनन्तर जैसे उक्त दृष्टान्तोंमें गुञ्जाघटादिकोंकी संख्या के अपरोक्षनिश्चयलिये सो मनुष्य नेत्रोंसें वा हस्तादिकोंके स्पर्श सें तिन गुञ्जाघटादिकोंका गणन करेहै तैसेहि उक्तशब्दसें परोक्षज्ञान हुएसें अनन्तर दशमत्वसंख्याके अपरोक्षनिश्चयलिये नेत्रोंसें वा हस्तादिकोंके स्पर्शसें तिन नदीतें पारहुए मनुष्योंका पुनः सोमनुष्य गणन करेहै वा गणित नवमनुष्योंका स्मरण करेहै यहां अभिप्राय यिहहै कि यदि तिसभ्रांत मनुष्यको गणित नवमनुष्योंकी संख्यामें संशयहोवे तो पुनः नेत्रोंसें वा हस्ता दिकोंसें गणन करेहै अर यदि तिन नवमनुष्योंकी संख्यामें

सन्देह न होवे तो तिनकी विज्ञातनवत्वसंख्याका स्मरण करेहै तदनन्तर जैसे उक्त दृष्टान्तोंमें नेत्रोंसें वा हस्तादिकोंसें गुञ्ज घटादिकोंके गणनसें गुञ्जाघटादिकोंकी संख्याका चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्ष होवेहै अर जैसे गणितनवमनुष्योंकी नवत्वसंख्या का चाक्षुषप्रत्यक्ष वा त्वाचप्रत्यक्षहुआहै तैसेहि तिसभ्रांतमनुष्य को पूर्व प्रत्यक्षहि स्वशरीरमें दशमत्वसंख्याका चाक्षुष प्रत्यक्ष होताहै वा स्वांगुलीस्पर्शसें त्वाचप्रत्यक्ष होताहै इसप्रकार स्वशरीर में दशमत्वसंख्यारूप विशेषणके चाक्षुषप्रत्यक्ष हुएसें अनन्तर दशमत्वसंख्या विशिष्ट दशम निजशरीरका 'दशम मैंहुं' ऐसा चाक्षुषप्रत्यक्ष वा साक्षिप्रत्यक्ष तिस दशममनुष्यको प्रकट होवेहै उक्त शब्दके श्रवणसें हि दशमत्वसंख्यावाले दशमशरीरका प्रत्यक्षज्ञान नहिंहोता ॥

पूर्वपक्षी—यद्यपि उक्तशब्दके श्रवणसेंहि दशमत्वसंख्या वाले दशमशरीरका प्रत्यक्ष नहिंहोता किन्तु 'दशमतूंहैं' इसशब्द सें परोक्षज्ञानहुए पूर्वगणितकियेहुए नवमनुष्योंकी नवत्वसंख्या का स्मरणकरेहै वा पुनः गणन करेहै तदनन्तर स्वशरीरमें दशमत्वसंख्यारूप विशेषणके चाक्षुषप्रत्यक्षहुएसें अनन्तरहि 'दशममैंहुं' ऐसा चाक्षुषप्रत्यक्ष वा साक्षिप्रत्यक्ष तिसदशमको उदय होवेहै तथापि वो दशममनुष्य कहिताहै कि मेरेको इस अन्यमनुष्यके 'दशमतूंहैं' इसकथनसें प्रत्यक्षहुआ अतः उक्तशब्द

सें प्रत्यक्षज्ञान मानना चाहिये ॥

सिद्धान्ती—हेभ्रातः अलातचक्रवत् चित्तकी शीघ्रगतिका अज्ञाता वो दशमपुरुष उक्तशब्दसें प्रत्यक्षज्ञान कहै तो वो अज्ञ पुरुष कहै परन्तु आपलोक विद्वज्जन चित्तकी शीघ्रगतिके ज्ञाता तो उक्तशब्दसेंहि प्रत्यक्षज्ञान कहिते शोभा नहिं पासकते जैसे दश रुपैवेतनवाला भृतक तो कहिताहै कि मैं स्वामीका दिया अन्नजल खाताहुं पीताहुं परन्तु योग्यबुद्धिमान् विचारें कि क्या भृतककूं स्वामी अन्नपकाकर देताहै जल भरकर देताहै ऐसे नहिंकर्ता किन्तु स्वामी तो प्रतिमास दशरुपै वेतन देताहै उसवेतनसें अन्न आदिक खरीदकर पकाकर भृतकमनुष्य खातापीताहै भृतकके कथनमात्रसें अन्नजलादिकोंका साक्षात्दाता स्वामी नहिं सिद्ध होसक्ता इसीप्रकार दशमके कथनमात्रसें उक्तशब्द प्रत्यक्षज्ञान का हेतु नहिं सिद्धहोसक्ता किन्तु 'दशमतूंहै' इसशब्दसें परोक्ष ज्ञानहुए पूर्वगणित कियेहुए नवमनुष्योंकी नवत्वसंख्याका स्मरण करेहै वा पुनः गणन करेहै तदनन्तर स्वशरीरमें दशमत्व संख्यारूप विशेषणके चाक्षुषप्रत्यक्षहुएसें अनन्तरहि 'दशममैंहुं ऐसा चाक्षुषप्रत्यक्ष वा साक्षिप्रत्यक्ष तिसदशमको उदयहोवेहै यिही अर्थ सिद्धहै अतः उक्तशब्दसें प्रत्यक्षज्ञानमानना अयुक्त हिहै ॥

यदि आपऐसेकहैं कि 'दशमतूंहै' इसवाक्यके श्रवणसें 'दशम

मैंहुं' ऐसा जो ज्ञानहोवेहै सो यिह अपरोक्षज्ञानका आकारहै अतः उक्तशब्दसें अपरोक्षज्ञान होताहै तो यिह साहसकथनभी अयुक्त हिहै क्युंकि किसी आकारमात्रसें ज्ञानकूं अपरोक्ष वा परोक्ष नहिं कहैसके किन्तु वस्तुके *सामान्यरूपकूं विषयकरण वाले ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहितेहैं और वस्तुके †विशेषरूपकूं विषय करणवाले ज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहेहैं जैसे धूमरूप हेतुके ज्ञानसें जो पर्वतमें अग्निके सामान्यरूपका ज्ञानहोवेहै सो परोक्षज्ञानहै अर तिस पर्वतमें अग्निके समीपवर्ती मनुष्यको जो तिसअग्निके विशेषरूपका ज्ञानहोताहै सो अपरोक्ष ज्ञानहै ॥

और जैसे 'कोकिलनादो मधुरः' इस वाक्यके श्रवणसें जो कोकिलनादके सामान्यरूपका ज्ञान होताहै सो परोक्षज्ञानहै अर मधुर कोकिलनादके श्रवणसें जो मधुरकोकिलनादके विशेषरूपका ज्ञान होताहै सो अपरोक्षज्ञानहै और जैसे 'इदं वारि शीतलम्' इस वाक्यके श्रवणसें जो जलकी शीतलताके सामान्यरूपका ज्ञान होताहै सो परोक्षज्ञानहै त्वगिन्द्रियसें स्पर्श कर जो जलकी शीतलताके विशेषरूपका ज्ञान होवेहै सो अपरोक्षज्ञानहै अर्थात् वस्तुके सामान्यरूपका जोजो ज्ञानहोवे सोसो परोक्षज्ञान कहियेहै अर वस्तुके विशेषरूपका जोजो ज्ञान

---

* आम रूपकूं † खास रूपकूं

होवे सोसो अपरोक्षज्ञान कहीताहै इस हेतुसें आकारमात्रसें ज्ञानकूं अपरोक्षकहना समीचीन नहिं जैसे किसी सुप्तपुरुषके मुखमें किसी मित्रने उपहासलिये कज्जल लेपदिया पुनः जागरण हुए पीछे किसी यथार्थवक्ताने कहा कि 'तूं कृष्णमुखवालाहैं' तब यथार्थवक्ताके शब्दसें 'मैं कृष्णमुखवालाहुं' ऐसा ज्ञान तो तिस पुरुषको होवेहै परन्तु यिह ज्ञान आकारमात्रसें अपरोक्ष कहना अयुक्तहै क्युंकि कृष्णरूप विशेषणका उक्तशब्दसें परोक्ष ज्ञान होनेतें कृष्णरूप विशिष्टमुखका 'मैं कृष्णमुखवालाहुं' ऐसा ज्ञान परोक्षहि होवेहै पुनः जब दर्पणद्वारा कृष्णताका प्रत्यक्ष होवे तब 'मैं कृष्णमुखवालाहुं' ऐसा जो ज्ञान होताहै सो अपरोक्षज्ञानहै और जैसे किसी देवदत्तके आगे किसी ऋणीपुरुष ने दशरुपै धरकर कहा कि 'यिह दशरुपैहैं' तब इसशब्दके बल सें 'यिह दशरुपैहैं' ऐसा ज्ञान तो तिस देवदत्तको होताहै परन्तु यिहज्ञान आकारमात्रसें अपरोक्षकहना अयुक्तहै क्युंकि यद्यपि दृष्टि अन्यत्रहोवे तो उक्तशब्दसेंभी रुपैओंका प्रत्यक्षज्ञान होता नहिं किंतु नेत्रोंकी दृष्टि देनेसें रुपैओंका अपरोक्षज्ञान तिस देवदत्तको होताहै तथापि दशसंख्यारूप विशेषणका गणनविना अपरोक्षज्ञान होवेनहिं इससें दशसंख्यारूप विशेषणका परोक्ष ज्ञान होनेसें तिस बिशेषणविशिष्ट रुपैओंका सोज्ञान परोक्षज्ञान हिहै इससें हि सो देवदत्त दशरुपैओंके अपरोक्षज्ञानलिये तिन रुपैओंका गणन करेहै तदनन्तर नेत्रोंसें वा हस्तसें तिस देवदत्त

को तिनरुपैओंकी दशसंख्याका प्रत्यक्षज्ञान होताहै तब दश संख्यारूप विशेषणका प्रत्यक्षज्ञानहुए जो 'यिह दशरुपैहैं' ऐसा ज्ञान होवेहै सो दशरुपैओंका प्रत्यक्षज्ञानहै इसतें आकारमात्रसें ज्ञानकूं अपरोक्ष कहना संभवेनहिं किंतु वस्तुके सामान्यरूपका ज्ञान परोक्षज्ञानहै और वस्तुके विशेषरूपका ज्ञान अपरोक्षज्ञान कहीताहै ॥

ऐसे आमलक घट पट रज्जु शुक्ति आदिक स्थूलपदार्थों के विशेषरूपका प्रत्यक्षभी यदि शब्दसें नहिंहोता तो सूक्ष्मतम आत्माका प्रत्यक्ष शब्दोंसें कैसे होसक्ताहै हेभ्रातः शब्दसें नहिं होता आत्मसाक्षात्कार तो समाधिकरहि होताहै ॥

और केईक ऐसे कहितेहैं कि समाधिसेंभी आत्म साक्षात्कार होवेहै अर जडचेतनके विचारसेंभी आत्मसाक्षात्कार होताहै यिह श्रीभगवद्गीताके षष्ठाध्यायके—

सर्वभूतस्थ मात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षतेयोगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

॥ २९ ॥

इसश्लोककी टीकामें मधुसूदनसरस्वतीजीनेभी लिखाहै सो टीका यिहहै—

सर्वेषुभूतेषु स्थावरजङ्गमेषु शरीरेषु भोक्तृतया स्थितमेक·

मेव नित्यं विभुमात्मानं प्रत्यक्चेतनं साक्षिणं परमार्थसत्य मानन्दघनं साक्ष्येभ्योऽनृतजड परिच्छिन्नदुःखरूपेभ्यो विवेके-नेक्षते साक्षात्करोति तस्मिंश्चात्मनि साक्षिणि सर्वानिभूतानि साक्ष्याण्याध्यासिकेनसंबन्धेन भोग्यतया कल्पितानि साक्षि साक्ष्ययोः संबन्धान्तरानुपपत्ते र्मिथ्याभूतानि परिच्छिन्नानि जडानि दुःखात्मकानि साक्षिणो विवेकेनेक्षते कः योगयुक्तात्मा योगेन निर्विचारवैशारद्यरूपेण युक्तः प्रसादं प्राप्तश्चात्माऽन्तःकरणं यस्य स तथा तथाच प्रागेवोक्तं निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः, 'ऋतम्भरातत्रप्रज्ञा' श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थ त्वादिति, तथाच शब्दानुमानागोचर यथार्थ विशेषवस्तुगोचर योगजप्रत्यक्षेण ऋतम्भरासंज्ञेन युगपत् सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टं च सर्वं तुल्यमेव पश्यतीति सर्वत्र समं दर्शन मस्येति सर्वत्र सम दर्शनः सन्नात्मानमनात्मानंच योगयुक्तात्मा, यथावस्थित मीक्षत इतियुक्तम् ॥

अथवा—यो योगयुक्तात्मा यो वा सर्वत्रसमदर्शनः स आत्मान मीक्षतइति योगिसमदर्शिनौ वात्मेक्षणाधिकारिणावुक्तौ यथाहि चित्तवृत्तिनिरोधः साक्षिसाक्षात्कारहेतुः तथा जडविवेकेन सर्वानुस्यूतचैतन्यपृथक्करणमपि नावश्यं योगएवापेक्षितः अत-एवाह वसिष्ठः—

**द्वौक्रमौ चित्तनाशस्य योगोज्ञानंच राघव ।**

योगोवृत्तिनिरोधोहि ज्ञानंसम्यगवेक्षणम् ॥
असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित्तत्वनिश्चयः ।
प्रकारौद्वौततोदेवो जगादपरमः शिव इति ॥

चित्तनाशं साक्षिणः सकाशात्तदुपाधिभूतचित्तस्य पृथक्करणात्तददर्शनं तस्योपायद्वयं एकोऽसंप्रज्ञातसमाधिः सम्प्रज्ञात समाधौहि आत्मैकाकारवृत्तिप्रवाहयुक्त मन्तःकरणसत्वं साक्षिणा नुभूयते निरुद्धसर्ववृत्तिकं तूपशान्तत्वान्नानुभूयते इतिविशेषः । द्वितीयस्तु साक्षिणि कल्पितंसमक्ष्य मनृतत्वान्नास्त्येव साक्ष्येवतु परमार्थसत्यः केवलोविद्यतइतिविचारः तत्र प्रथममुपायं प्रपञ्च परमार्थतावादिनो हैरण्यगर्भादयः प्रपेदिरे तेषां परमार्थस्य चित्त-स्यादर्शने नसाक्षिदर्शने निरोधातिरिक्तोपायासंभवात् श्रीमच्छङ्कर भगवत्पूज्यपादमतोपजीविनस्त्वौपनिषदाः प्रपञ्चानृतत्ववादिनो द्वितीयमेवोपायमुपेयुः तेषांह्यधिष्ठानज्ञानदार्ढ्येसति तत्र कल्पितस्य बाधितस्य चित्तस्य तद्दृश्यस्य चादर्शनमनायासेनैवोपपद्यते अत एव भगवत्पूज्यपादाः कुत्रापि ब्रह्मविदां योगापेक्षां न व्युत्पादयां बभूवुः अतएव चौपनिषदाः परमहंसाः श्रौतेवेदान्तवाक्यविचार एव गुरुमुपसृत्य प्रवर्तन्ते ब्रह्मसाक्षात्काराय नतुयोगे विचारेणैव चित्तदोषनिराकरणेन तस्यान्यथा सिद्धत्वादिति कृतमधिकेन ॥

इसटीकामें मधुसूदनसरस्वतीजीने उक्तभगवद्गीताश्लोक के दोप्रकारसें अर्थकियेहैं तामें प्रथमअर्थ यिहहै कि—

निर्विचारवैशारद्यरूप योगसें 'युक्तहै' अध्यात्मप्रसादकूं प्राप्तहै अन्तःकरण जिसका ऐसा सो [सर्वत्रसमदर्शनः] सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट सर्ववस्तुओंकूं एककालमें देखनेवाला योगी स्थावर जंगम सर्वशरीरोंमें भोक्तारूपसें स्थित एकविभुसच्चिदानन्दसाक्षीआत्माकूं जडपरिच्छिन्नदुःखरूप मिथ्यासाक्ष्यपदार्थोंसें भिन्नताकर साक्षात्करे है अर तिससाक्षीआत्मामें भोग्यरूपसें कल्पित परिच्छिन्नजड दुःखरूप सर्वभूतोंकूं साक्षीसें भिन्नताकर साक्षात्करे है भावयिहहै कि सर्वत्रसमदर्शनवाला योगयुक्तात्मा योगी ऋतम्भरसंज्ञक योगज प्रत्यक्षसें आत्माकूं और अनात्माकूं जैसे स्थितहैं तैसे सर्वकूं प्रत्यक्षकरे है निर्विचारवैशारद्यका अर अध्यात्मप्रसादका अर्थ पातञ्जलदर्शनके प्रथमपादके सन्तालीसवें सूत्रकी योगचन्द्रिकाटीकामें देखलेना विस्तारभयसें यहां नहिं लिखसका ॥

और दूसराअर्थ मधुसूदनसरस्वतीकृत यिहहै कि जो योगयुक्तात्माहै वा जो सर्वत्र समदर्शनहै सो आत्माकूं प्रत्यक्ष करेहै अर्थात् योगी और समदर्शी आत्मसाक्षात्कारके दोअधिकारी कहेहैं इससें जैसे चित्तवृत्तिनिरोध साक्षीसाक्षात्कारका हेतु है तैसे जडचेतनके विचारद्वारा जडोंतें विभुचैतन्यका भिन्नकरणाभी आत्मसाक्षात्कारका हेतुहै इससें आत्मसाक्षात्कारलिये योग अवश्यं अपेक्षित नहिंहै इसीसें श्रीवसिष्ठजीनेभी द्वौक्रमौ

चित्तनाशस्य इत्यादि श्लोकोंमें कहाहै तिनश्लोकोंका अर्थ मधु· सूदनसरस्वतीजी ऐसे लिखते हैं कि—

साक्षीसें साक्षीकी उपाधिरूप चित्तके पृथक्करणेतें जो चित्तका अदर्शनहै सो चित्तका अदर्शन चित्तनाशपदका अर्थहै ऐसे चित्तके अदर्शनरूपनाशके उपाय दोहैं एक असम्प्रज्ञात समाधि उपायहै यिहभी विदितहो कि सवृत्तिकचित्त साक्षीसें अनुभूत होताहै वृत्तिशून्यचित्त अनुभूत नहिंहोता अर संप्रज्ञात समाधिअवस्थामें आत्माकारवृत्तिओंके प्रवाहयुक्त अन्तःकरण होवे ह अतः अनुभूतहोनेसें संप्रज्ञातावस्थामें चित्तका अदर्शनरूप नाश नहिंहोता अर असम्प्रज्ञात योगावस्थामें सर्ववृत्तिओंसें रहित हुआ चित्त अनुभूत नहिंहोता इससें असम्प्रज्ञातसमाधि अवस्था में चित्तका अदर्शनरूप नाशहोताहै यिह सम्प्रज्ञातसें असंप्रज्ञात का भेदहै और साक्षीमें कल्पितसाक्ष्य मिथ्याहोनेसें हैहि नहिं केवल साक्षीहिपरमार्थ सत्यहै यिहविचाररूप द्वितीय उपायहै इन दोनों उपायोंमें प्रथमउपायकूं प्रपञ्चसत्यत्ववादी हिरण्यगर्भके मतानुसारी आदिक अंगीकार करेहैं क्युंकि तिनके मतमें सत्य चित्तके अदर्शनरूपनाशमें असम्प्रज्ञाततें भिन्न उपायका असंभव है और श्रीमद्भगवत्पूज्यपाद शंकराचार्योंके मतानुसारी प्रपञ्च मिथ्यात्ववादी उपनिषद्मतवाले द्वितीय उपायकूं प्राप्तहोवे हैं तिनको अधिष्ठानज्ञानकी दृढताहुए तिससाक्षीमें कल्पित बाधित

चित्तका अदर्शन आर तिसचित्तमें 'दृश्य' सबजगत्‌का अदर्शन अनायाससें हि सिद्ध होजाताहै इसीहेतुसें भगवत्पूज्यपाद शङ्कराचार्यौंने कहींभी ब्रह्मवेत्तोंको योगकी अपेक्षा नाहिं प्रतिपादनकरी इसीसें उपनिषद्‌मतवाले परमहंसजन गुरुके समीप आकर ब्रह्मसाक्षात्कारलिये वेदान्तवाक्यनके विचारमेंहि प्रवृत्त होते हैं योगमें परमहंस नहिं प्रवृत्तहोते क्युंकि विचारसेंहि चित्तके दोषोंकी निवृत्ति होजावेहै तिस योगको अन्यथासिद्ध होनेसें इति ॥

जो नियतकारण न होवे सो अन्यथासिद्ध कहियेहै ॥

ऐसे मधुसूदनसरस्वतीजीकी व्याख्यारूप प्रमाणसें समाधिकरभी आत्मसाक्षात्कार होताहै और विचारकरभी आत्मसाक्षात्कार होवेहै ॥

सिद्धान्ती—यिह कथनभी समीचीन नहिं क्युंकि सुनिये—

१—प्रथम तो प्रमाके करणरूप षट्‌प्रमाणोंमें विचारकूं कहीं गणन नहिंकिया यदि आप 'अनुमानप्रमाणके अर अर्थापत्तिप्रमाणके अन्तर्गत विचारहै' ऐसे कहैं तो अनुमान प्रमाणसें अर अर्थापत्तिप्रमाणसें अनुमितिआदि परोक्ष ज्ञान हि होताहै यिह निर्विवाद नियमहै अतः विचारसेंभी परोक्षज्ञानहि कहना होगा अपरोक्षज्ञान कहिना समीचीन नहिं ॥

२—यदि आप कहैं कि 'श्रवणमननरूप सांख्यका नाम विचार है' तो पूर्वोक्त नानाप्रमाणोंके प्रवाहसें तथा अनेक युक्तिओंसें सिद्ध होचुकाहै कि श्रवणमननरूप सांख्यसें परोक्षज्ञान होताहै तदनन्तर निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप समाधिकरहि आत्मसाक्षात्कारहोवेहै ॥

३—गीताके त्रयोदशाध्यायके चौबीसवें श्लोककी टीकामें श्रीमधुसूदनसरस्वतीजी लिखतेहैं कि निदिध्यासनसें पूर्वभावी श्रवणमननरूप सांख्यसें ध्यानकी उत्पत्तिद्वारा आत्मसाक्षात्कार होताहै अर्थात् सांख्ययोगके क्रमसमुच्चयसें आत्मप्रत्यक्ष होवेहै सो मधुसूदनसरस्वतीजीकी टीका प्रथमप्रकाशमें मैं लिखचुकाहुं अर यहां ध्यानयोग विना विचारसेंभी आत्मसाक्षात्कार मधुसूदनजी लिखते हैं अतः मधुसूदनजीके पूर्वउत्तर विरुद्धवाक्यहैं अव्यवस्थित वाक्यहैं अतः मधुसूदनजीके ऐसे वाक्यनसें विचारमात्र कर आत्मसाक्षात्कार कहिना समीचीन नहिं ॥

४—गीताषष्ठाध्यायके इसमूलश्लोककूं तथा ताके शांकरभाष्य कूं सम्यक्‌विचारिये तोभी

मधुसूदनसरस्वतीजीकी व्याख्यारूप जो आपने प्रमाण कथन किया सो समीचीन नहिं क्युं समीचीन नहिं सो सावधानतासें सुनिये—

१—यद्यपि पहिलाअर्थ श्रीशाङ्करभाष्यके अनुसारीहै इससें पहिलाअर्थ यथार्थहै माननीयहै तथापि मधुसूदनजीका दूसराअर्थ शांकरभाष्यसें विरुद्धहै तथा मूलगीताश्लोकसें भी विरुद्धहै क्युंकि 'जो योगयुक्तात्माहै वा जो सर्वत्र समदर्शनहै सो आत्माकूं प्रत्यक्ष करे है' इसप्रकार जो मधुसूदनजी वाशब्दकूं अपनी गिरासें खर्चकर अर्थकर्ते हैं सो यदि ऐसे आत्मसाक्षात्कारके दोअधिकारी विवक्षित होते तो मूलगीताश्लोकमेंभी वाशब्द अवश्यं रखते अर भाष्यकारभी इसश्लोकके भाष्यमें वाशब्द रखकर आत्म- साक्षात्कारके दो अधिकारी लिखते हेप्रियपाठक विचा- रिये कि न ऐसे भाष्यकार अर्थकर्ते हैं अर न गीतामें वाशब्द रखाहै अतः गीतासें अर श्रीशांकरभाष्यसें विप- रीतअर्थ मधुसूदनजीका माननीय नहिं होसक्ता ॥

२—महाभारतकी टीकामें श्रीपण्डितनीलकण्ठजीनेभी भग- वद्गीताके इसीश्लोककी टीकामें इसअर्थका सम्यक्खण्डन कियाहै तथा भाष्योत्कर्षदीपिकाटीकामेंभी इसअर्थका स्पष्टखंडन कराहै ॥

३—आत्मसाक्षात्कारके समाधि वा विचार दोउपाय यदि निर्णीत होते तो मधुसूदनजी श्लोकका दूसराअर्थहि निःशङ्क लिखते गौरवदोषग्रस्त पहिलाअर्थ मधुसूदनजीने

क्युं लिखा ॥

४—यदि योगकूं मधुसूदनजी अन्यथा सिद्ध लिखतेहैं तो समाधिकूं साक्षिसाक्षात्कारका हेतु क्युं कथनकरा अर्थात् समाधिकूं साक्षिसाक्षात्कारका हेतु नहिंकहनाचाहियेथा क्युंकि अन्यथासिद्धकूं विद्वज्जन कारणकोटिमें प्रविष्ट नहिंकतें कारणकोटिमें प्रविष्ट कर्कें फिर अन्यथासिद्ध कहना अपना आग्रह प्रकटकरणा है पुनः यदि आप ऐसेकहैं कि मधुसूदनजीने दोपक्ष लिखेहैं सो विचारपक्षमें योगकूं अन्यथासिद्धकहाहै तो हेभ्रातः समाधिपक्षमें अपने विचार कूंभी मधुसूदनजीने अन्यथा सिद्धलिखना चाहियेथा ॥

५—साक्षिसाक्षात्कारके दोहेतुहैं ऐसी प्रतिज्ञाकर्कें जो मधुसूदनजी वासिष्टश्लोकरूप प्रमाण देतेहैं सोभी प्रतिज्ञात अर्थतें विपरीतहिहै क्युंकि वासिष्टश्लोकमें आत्मसाक्षात कारके दोउपाय नहिंकहे किन्तु चित्तनाशके दो उपाय कहेहैं अर मधुसूदनजीनेभी तिसवाशिष्टश्लोकके अर्थमें चित्तनाशका चित्तका अदर्शन अर्थकर्कें तिसके दोउपायहैं ऐसाहि अर्थ लिखाहै इससें विचार देखिये कि आत्मसाक्षात्कारके दो हेतुहैं इसप्रतिज्ञातअर्थसें प्रमाण विपरीत हि स्पष्टहै अतः इसउक्तप्रमाणसेंभी मधुसूदनजीका प्रतिज्ञातअर्थ सिद्ध नहिं होसक्ता ॥

६—मधुसूदनजीने जो प्रपञ्चसत्यत्वमत हिरण्यगर्भका अर प्रपञ्चअसत्यत्वमत श्रीशंकराचार्योंका लिखाहै सोभी मधुसूदनजीको लिखना योग्य नहिंथा क्युंकि यदि इन का ऐसा भिन्नभिन्न मत होवे तो हिरण्यगर्भमें वा आचार्योंमें भ्रमविप्रलिप्सा दोष सिद्ध होवेहै इससें श्रीस्वामीशंकराचार्योंका अर भगवत् हिरण्यगर्भका मत भिन्नभिन्नहै, ऐसा कथनकरणा किसीकोभी योग्यनाहिं ॥

७—प्रपञ्चमिथ्यात्ववादीओंको जो मधुसूदनजीने 'कल्पितचित्त का अदर्शन अनायाससें कथनकिया' सोभी अयुक्तहिहै क्युंकि 'सवृत्तिक चित्त साक्षीसें अनुभूतहोवेहै अर वृत्ति शून्यचित्त अनुभूत नहिंहोता' यिह नियमहै अर मधु- सूदनजीभी ऐसेहि लिखतेहैं तो चित्त कल्पितहै बाधितहै वा अन्यथाहै जब चित्तवृत्तिआं उदय होतीहैं तब जैसा कैसा चित्त अनुभूतहोवेहिहै अतः चित्तवृत्तिओंके उदय हुए चित्तका अदर्शन होसके नहिं किन्तु सर्ववृत्तिओंके निरोधहुएहि चित्तका अदर्शनहोताहै ॥

अर वाशिष्टश्लोकका अर्थतो यिहहै रक्तपुष्पपर धरे शुद्ध स्फटिकमणिकीन्यांई ध्येयमात्रके रूपसें भासते चित्तका जो निजरूपसें 'अभानहै' अदर्शनहै सोई चित्तनाशपदका अर्थहै ऐसे चित्तनाशके दोउपायहैं तामें राजसतामस वृत्तिओंकानिरोध

रूपयोग एक उपायहै और ज्ञानकहिये 'सम्यगवेक्षेण' आत्मतत्वमात्राकार वृत्तिकरणी दूसरा उपायहै। सो किसीको राजस तामसवृत्तिओंका निरोधरूप योग 'असाध्यहै' कठिनहै अर किसी को तत्वनिश्चयकहिये आत्मतत्त्वाकार वृत्तिकरणी कठिनहै॥

अर्थयिह पूर्वयत्नके अभावसें एकाग्रताके स्वल्पमात्र संस्कारसेंभी रहित क्षिप्तचित्तवालेपुरुषोंको राजसतामसवृत्तिओंका निरोधरूप योग कठिनहै और जिनोंने मोक्षशास्त्रका अध्ययन नहिंकिया इससें निरवयव नीरूप आत्मतत्वके सम्यक्श्रवण सें अर मननसें रहितहैं ऐसे प्राकृतजनोंको विभुआत्मतत्वाकार वृत्तिकरणी कठिनहै हेराघव 'तिससें' उक्तचित्तनाशके दोउपाय होनेसें दोउपायोंकूं परमकल्याणमूर्ति महादेव कहितेभै॥

यिहभी विदितरहै 'द्वौक्रमौ' इत्यादि पहिलाश्लोक तो वासिष्ठमेंहै परन्तु 'असाध्यःकस्यचिद्' इत्यादि दूसराश्लोक वहां नहिंमिला अतः कहीं हो तो उसका अर्थ लिखहि दियाहै॥

८—मधुसूदनजीने जो लिखा कि पूज्यपाद श्रीशङ्कराचार्योंने कहींभी योगकी अपेक्षा नहिं प्रतिपादन करी सो यिहभी असत्यहि लिखाहै क्युंकि—

भाष्यकारोंनें उपनिषद्भाष्यमें 'अपिसंराधनेप्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इसशारीरकसूत्रके भाष्यमें गीताभाष्यमें बहुतजगोंमें मूलानुसारी योगका प्रतिपादन कियाहिहै और विवेकचूडामणिमेंभी

भाष्यकारोंने कहाहै श्लोक--

आप्तोक्तिंखननंतथोपरिशिला
द्युत्कर्षणंस्वीकृतिं ।
निक्षेपःसमपेक्षते नहिवहिः
शब्दैस्तुनिर्गच्छति ॥
तद्वद्ब्रह्मविदोपदेशमनन
ध्यानादिभिर्लभ्यते ।
मायाकार्यतिरोहितंस्वममलं
तत्त्वंनदुर्युक्तिभिः ॥
निर्विकल्पकसमाधिनास्फुटम् ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ॥

नान्यथाचलतयामनोगतेः प्रत्ययान्तरविमिश्रितंभवेत् ॥

इनश्लोकोंका अर्थ लिखचुकाहुं ॥

पुनः यदि आप ऐसे कहै कि यिह ध्यानादिकोंका समाधि का उपदेश आत्मसाक्षात्कारकी इच्छावाले जिज्ञासुजनोंप्रति कथन कियाहै भाष्यकारोंने ब्रह्मवेत्ताओंप्रति समाधिका उपदेश नहिंकरा सो यिहकथनभी अयुक्तहिहै क्युंकि यदि जिज्ञासुजनों

के आत्मसाक्षात्कारलिये ध्यानादिकोंका उपदेश भाष्यकारोंने कराहै तो वो जिज्ञासुजन भाष्यकारोंके उपदेशानुसारी ध्यानादि द्वारा आत्मसाक्षात्कारकूं प्राप्तहोकर ब्रह्मवेत्ता हुएहैं उनमें तो ध्यानकी परिपक्वावस्थारूप समाधि अर्थसेंहि सिद्धहै तो फिर ब्रह्मवेत्तोंकूं ध्यानादिकोंके उपदेशका क्या प्रयोजनथा ॥

९—मधुसूदनजीने लिखाहै कि उपनिषद्‌मतवाले परमहंस वेदान्त वाक्योंके विचारमेंहि प्रवृत्तहोतेहैं ब्रह्मसाक्षात्कार लिये योगमें प्रवृत्त नहिंहोते सोअतिकष्टहै उक्तनाना युक्तिओंसें अर उपनिषद्वाक्य शारीरकसूत्रादिरूप अनेक प्रबलप्रमाणोंसें ब्रह्मसाक्षात्कार समाधिअवस्थामेंहि सिद्ध होवेहै समाधिविना ब्रह्मसाक्षात्कार नहिंहोता तो वो परमहंस मेरेभ्रातृगण उक्तयुक्ति अर उपनिषदादिप्रमाणों सें विरुद्धअर्थमें क्युं दुराग्रह कर्तेहैं उक्तयुक्ति अर उक्त उपनिषदादिक प्रमाणोंकूं क्युं नहिं विचारते बहुत क्या मूलगीताश्लोकसें अर श्रीशाङ्करभाष्यसें विपरीतअर्थ माननीय नहिंहोसक्ता किन्तु 'सर्वत्रसमदर्शनवान् योग युक्तपुरुषहि सर्वभूतोंमें आत्माकूं अर आत्मामें सर्वभूतोंकूं प्रत्यक्ष करेहै' यिहश्रीशांकरभाष्यका अर्थहि सत्यहै मान· नीयहै अतः श्रवणमननरूप सांख्यसें परोक्षज्ञानहुएतें अनन्तर ध्यानरूप निदिध्यासनद्वारा समाधिकरहि आत्म

साक्षात्कार होवेहै ऐसेहि भगवद्गीताके त्रयोदशाध्यायके चौबीसवेंश्लोककी मधुसूदनी टीकामें मधुसूदनजीनेभी निदिध्यासनसें पूर्वभावि श्रवणमननरूप सांख्यसें ध्यान की उत्पत्तिद्वाराहि आत्मसाक्षात्कार कथन कियाहै इससें यद्यपि आत्माकी परोक्षप्रमाके करण तो शब्दअनुमाना-दिक सम्भवेहैं तदापि उक्त नाना प्रबलप्रमाणोंके प्रवाहसें युक्तिओंसें आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाके शब्दादिक करण संभवे नहिं किन्तु सूक्ष्मतमआत्माकी प्रत्यक्षप्रमाका तो निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप प्रसंख्यानहि करणहै ॥

पूर्वपक्षी—उत्तमाधिकारीको तो श्रवणमननसें आत्म-साक्षात्कार होताहै ॥

सिद्धान्ती—यिह अविचारित कथनभी समीचीन नहिं तथाहि सुनिये मलविक्षेपदोषसें रहित जो विवेकवैराग्यादि चतुष्टयसाधनसंपन्नहोवे सो वेदान्तग्रन्थनमें अधिकारीहै ॥

उपास्य सगुणदेवके साक्षात्कारपर्य्यन्त जिसअधिकारीनें उपासना करीहै ऐसा कृतोपासनपुरुष उत्तमाधिकारी कहीताहै ॥

हेभ्रातः विचारका समयहै कि जब चित्तकी चञ्चलता रूप विक्षेपदोषसें रहित शमदम समाधानादि साधनोंसहितपुरुष अधिकारी होताहै तो सगुणदेवके साक्षात्कारपर्य्यन्त जिसनें

ध्यानादिरूप उपासनाकरीहै ऐसे उत्तमाधिकारीके क्या ध्यानकी परिपाकावस्थारूप समाधि सिद्ध नहिंहुआहोता ऐसे नहिं किन्तु उपास्यदेवमें सिद्धसमाधिवालापुरुषहि उत्तमाधिकारी कहिलाताहै इससें उत्तमाधिकारीको ध्यानके साधनोंके अभ्यासकी अपेक्षा नहिंहोती किन्तु श्रवणमननसें निश्चयकर्के झटिति हि धर्ममेघ समाधिमें निश्चल स्थितहोकर परमात्मसाक्षात्कार करेहै ॥

जैसे उत्तमाधिकारी राजाबलिनें गुरुशुक्रजीके एकश्लोक रूप उपदेशकूं श्रवणकर्के पुनः मननरूप विचारकर्के झटिति हि निश्चलसमाधिमें स्थितहोकर आत्मप्रत्यक्ष किया और जैसे चतुर्दशवर्ष महावनमें उपासना करणेसें उत्तमाधिकारी राजा शिखिध्वजने कुम्भमुनिरूप चूडालासें श्रवणकर्के मननकर्के झटिति हि निश्चलसमाधिमें स्थितहोकर आत्मसाक्षात्कार किया इसीप्रकार उत्तमाधिकारीपुरुषोंको श्रवणमननसें अनन्तर शीघ्र समाधिअवस्था हुएहि ब्रह्मप्रत्यक्षहोताहै इसीहेतुसें उक्त उपनिषदादि बहुतप्रमाणोंमें समाधियोगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै और बहुतउपनिषदादिप्रमाणोंमें ध्यानयोग समाधि सेंहि आत्मप्रत्यक्षहोता कहाहै और उपनिषदादि बहुतप्रमाणोंमें समाधिअवस्थाहुए हि आत्मसाक्षात्कारहोता कहाहै ऐसे सो बहुत हि प्रबलप्रमाण मैं लिखचुकाहुं अतः आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा का करण प्रसंख्यानहिहै ॥

'परमात्मा अतीन्द्रियहै' यिह तो श्रुतिस्मृतिआदिकोंमें तथा विद्वज्जनोंमें प्रसिद्धहिहै जैसे शारीरकमें--

तदव्यक्तमाहहि ।

अ० ३ ॥ पा० २ ॥ सू० २३ ॥

याका भाष्य--

तदव्यक्त मनिन्द्रियग्राह्यम् आह ह्येवंश्रुतिः ॥

भाष्यकी रत्नप्रभाटीका—

रूपाद्यभावादव्यक्तमिन्द्रियाग्राह्यम् ॥

अर्थ—शुक्लपीतादिक वर्णादिकोंके अभावसें ब्रह्मपरमात्मा अव्यक्त कहिये 'इन्द्रियाग्राह्यहै' इन्द्रियोंसें प्रत्यक्षहोनेयोग्य नहिं है ऐसे श्रुति कहितीहै ॥

नचक्षुषागृह्यते नापिवचा नान्यैर्देवैः—
अणोरणीयान्महतोमहीयान् ॥

इत्यादिक श्रुतिवाक्यहैं इनका अर्थ प्रथम लिखचुकाहुं ॥

यद्यपि गीताऽऽदिकोंमें कहाहै मनभी इन्द्रियहै तथापि ऐसे केवल मनके विद्यमान होतेभी अतीन्द्रियपदार्थोंका प्रत्यक्ष नहिं होता किन्तु साधनोंके क्रमकर मनमें एकाग्रवृत्तिआंरूप समाधि के उदयहुएहि अतीन्द्रियवस्तुओंका प्रत्यक्ष होताहै क्युंकि

समाधिसें अन्य किसीमेंभी अतीन्द्रियपदार्थके प्रत्यक्षज्ञानजनन का सामर्थ्य नहिं है एकसमाधिमेंहि अतीन्द्रियवस्तुके प्रत्यक्ष ज्ञानजननका सामर्थ्यहै सो समाधिरूप प्रसंख्यान इन्द्रिय नहिंहै और कहींभी किसीनेभी प्रसंख्यानकूं इन्द्रियरूप नहिं कहाहै ॥

ऐसे अतीन्द्रियआत्माकी प्रत्यक्षप्रमारूपपक्षमें प्रसंख्या- नेतरकरणाजन्यत्वरूप साध्यका 'निश्चायक' अतीन्द्रियवस्तुगोचर प्रत्यक्षप्रमात्वरूपहेतु व्यभिचाररहितहै निर्दोष *सद्धेतुहै ॥

ऐसे अनुमानादिक उक्त नानायुक्तिओंसें और कथित अनेक श्रुतिस्मृत्तिआदिक प्रबलप्रमाणोंसें आत्मसाक्षात्कारका करण प्रसंख्यानहि है ॥

विदितरहै कि ग्रन्थकारोंने स्वस्वमतानुसारी करणका लक्षण भिन्नभिन्न कियाहै तथाहि केईग्रन्थकारोंने व्यापारवाला जो असाधारणकारण सो करण कहियेहै । द्रव्यसेंभिन्न जो तिस सैंउत्पन्नहुआ तिससेंजन्यका जनकहोवे सो व्यापार कहीताहै कारण दोप्रकारका होताहै एक साधारणकारण और दूसरा असाधारणकारण होवेहै कार्यमात्रका जो कारण सो साधारणकारण कहियेहै जैसे ईश्वरेच्छा अदृष्ट प्रतिबन्धकाभावादिक साधारण

---

* सत्‌हेतु

कारणहैं ऐसेसाधारणकारणोंसेंभिन्न जोजो कारणहै सोसो असाधारणकारणहै यथा घटका भ्रमणरूपव्यापारवाला असाधारण कारण चक्रहै इससें घटका चक्र करणहै और जैसे मुण्डनका घर्षणरूपव्यापारवाला असाधारणकारण *क्षुरहै अतः मुण्डनका क्षुर करणहै ॥

और कोईग्रन्थकार ऐसे कहितेहैं कि जिसके हुएसें कार्य में विलम्ब नहिंहोवे किन्तु व्यवधानरहित उत्तरक्षणमें कार्य उत्पन्नहोवे ऐसाकारण करण कहियेहै अर्थात् उक्तमतमें जो व्यापारहैं वोहि इसमतमें करणहैं ॥

और केईग्रन्थकार व्यापारकूं करण नहिं मानतेहुए 'व्यापारसें भिन्न जो असाधारणकारण सो करणहै वो व्यापार वालाहोवे वा व्यापाररहितहोवे' ऐसेकहितेहैं और केई कहितेहैं कि ऐसे लक्षण करें तो कुलालनापितादिकर्तृमें कारणमें करण लक्षणकी अतिव्याप्तिहोवेहै अतः व्यापारसेंभिन्न जो व्यवधान रहित साक्षात्साधनहै सो करणकहियेहै कुलाल नापितादिक चक्रक्षुरादिद्वारा कारणहैं साक्षात्साधननहिं इससें तिनमें अतिव्याप्ति होवे नहिं आत्मेक्षणरूप प्रत्यक्षप्रमाका व्यवधानरहित साक्षात्साधन प्रसंख्यानहिहै इससें ताका प्रसंख्यान हि करण है इसीहेतुसें भाष्यकारोंने—

---

* उस्तरा

श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

इसमन्त्रके भाष्यमें श्रवणमात्रसें आत्मसाक्षात्कारका अभाव कहाहै इसी हेतुसें भाष्यकारोंने विवेकचूडामणिके—

श्रुतेः शतगुणंविद्यान्मननंमननादपि ।
निदिध्यासंलक्षगुण मनन्तंनिर्विकल्पकम् ॥
॥ ३६४ ॥

इसश्लोकमें श्रवणमननका मोक्षरूप अनन्तफल नहिं कथनकिया अर श्रवणमननमें साधनोंकी समाप्तिभी नहिंकरी अर निदिध्यासनमेंभी साधनसमाप्ति नहिंकरी हेभ्रातः देखिये श्रवणमनननिदिध्यासनमें उत्तरउत्तरका अधिकफल कथनकर्के निर्विकल्पसमाधिकाहि मोक्षरूप अनन्तफल कहाहै अर निर्विकल्पसमाधिमें हि साधनसमाप्ति करीहै इसश्लोककी टीका में श्रीपं०केशवानन्दजीनेभी यिहअर्थ स्पष्टलिखाहै ॥

इसीहेतुसें श्रुतिस्मृतिमहाभारत विवेकचूडामणिआदिकों में 'समाधिविना' योगविना आत्मसाक्षात्कारका अभाव कथन कियाहै सो श्रुतिस्मृतिआदिक पूर्वलिखचुकाहुं इसीहेतुसें आत्मपुराणके—

योममेकंविहायाय मानन्दात्मामहेश्वरः ।
नैववाचानमनसा प्राप्तुंशक्योनचक्षुषा ॥
अ० ९ ॥ ७२३ ॥

इसश्लोकमें देखो एकपद रखाहै अर्थात् प्रकृतआनन्दरूप आत्मा महेश्वर एकयोगसेंविना 'वाक्यसें' शब्दसें नहिंप्राप्त हो सकेहै और न मनसें अर्थात् न श्रवणसें न मननसें प्राप्त होसके है न चक्षुसें प्राप्तहोसकेहै विदितरहै कि महेश्वरपरमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है ताका साक्षात्कार हि ताकी प्राप्तिहै सो एक योगसें विना शब्दादिकोंसें नहिं होसकेहै ॥

अर प्रमाके करणकूं प्रमाण कहितेहैं अतः आत्मेक्षणरूप प्रत्यक्षप्रमाका प्रसंख्यान हि प्रमाणहै यिह अर्थ श्रुतिस्मृतिआदि प्रमाणोंके निर्मल प्रबलप्रवाहसें तथा दृढयुक्तिओंसें सिद्धहै ॥३॥

अतोह्यात्मेक्षणार्थाय मुमुक्षुभिः सुशिक्षितैः ।
तत्प्रमाणंप्रसंख्यानं सुसम्पाद्यम्प्रयत्नतः ॥ ४ ॥

जाताऽवदिस्यात्कृतपुण्यपुञ्जैः
संसारदावानलभीस्तदाऽस्य ।
संसारभीरोर्नहितन्मुमुक्षो
रेकंप्रसंख्यानमृतेशरण्यम् ॥५॥

टीका—जिसहेतुसें आत्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाका प्रसंख्यान हि प्रमाणहै इसहेतुसें गुरुशास्त्रद्वारा सुशिक्षित मुमुक्षुजनोंने वैराग्यसहित अभ्याससरूपयत्नसें आत्मसाक्षात्कारलिये तिसका करणरूप प्रमाण जो प्रसंख्यानहै सो सम्यक् सम्पादन करा

चाहिये ॥ ४ ॥

क्युंकि वनाग्निकीन्याईं भयंकर जन्ममृत्युआदिरूप संसारतें यदि कियेहुए पुण्यपुञ्जोंसें भय उत्पन्नहुआहो तब ऐसे संसारतें भीरु तिससें मुक्तहोनेकी अभिलाषावाले इस मुमुक्षुका एकप्रसंख्यानसेंविना औरकोई शरण्य नहिंहै जो शरणागतकी रक्षाकरणेयोग्यहोवे सो शरण्य कहियेहै ऐसा मुमुक्षुका शरण्य एकप्रसंख्यानहिहै ॥ ५ ॥

पूर्वपक्षी—मोक्षस्यवेदे श्रुतमेकमेव
ज्ञानंहिहेतुर्नहिकश्चिदन्यः ।
प्रोक्तंमुनीन्द्रैश्चतदेवतज्ज्ञै
स्तस्मैशरण्यंतुकथंतदन्यत् ॥
॥ ६ ॥

टीका—वेदमें एकज्ञानहि मोक्षका हेतु सुनाहै । अन्य कोई हेतु नहिंसुना और मोक्षकेज्ञाता मुनीन्द्रोंनेभी सो ज्ञानहि मोक्षका हेतु कहाहै अतः तिसमोक्षलिये ज्ञानसेंअन्य प्रसंख्यान कैसे शरण्य संभवेहै अर्थात् मोक्षलिये एकज्ञानहि शरण्यहै अन्य कोई शरण्य संभवेनाहिं ॥ ६ ॥

सिद्धान्ती—श्रवणाद्योगशब्दस्य क्षोभंनोकुरुमानद ।
भ्रातर्योगस्यज्ञानस्य यतोऽर्थोऽस्त्येकएववै ॥
॥ ७ ॥

टीका—पूर्वले श्रीवसिष्ट भृगु कपिल कश्यप अत्रि अगस्त्य याज्ञवल्क्य पराशर सुलभा मदालसा चूडाला शिखिध्वज जनक व्यास शुकादि आत्मविद्याके सर्व आचार्य्य योगयुक्तहि श्रवणमैं आते हैं और इससमयमें प्रायः ज्ञानाभिमानी मेरे भ्रातृ गण योगनामके श्रवणसैंभी क्षोभकर्ते हैं इसहेतुसैं तिनप्रति प्रार्थना करुंहुं कि 'हेमानद' हेप्रमाणद भ्रातः योगनामके श्रवण सें क्षोभ मतकरो क्युंकि जिसहेतुतें घटकुम्भकी न्यांई योगका अर ज्ञानका एकहि अर्थहै ॥

हेपाठक प्रथमप्रकाशमें योग अर ज्ञानकी एकार्थता विषयक उपनिषदादिक बहुतप्रमाणोंकूं मैं लिखचुकाहुं आपफिर दृष्टिगोचर करलीजिये अर्थयिह चित्तकी वृत्तिआंरूप सम्प्रज्ञात योगहै अर चित्तकी वृत्तिआंरूप ज्ञानहैं इससें योगके ज्ञानके अर्थ में कुछभेद नहिं ॥

पूर्वपक्षी—ध्येयमात्राकार वृत्तिओंके प्रवाहकूं योग कहिते हैं ॥

सिद्धान्ती—एकवृत्तिके निवृत्तहुए द्वितीयावृत्ति द्वितीया के नाशहुए तृतीयावृत्ति उदय होतीहै ऐसी वृत्तिओंसेंभिन्न प्रवाह कोई वस्तु नहिं है अतः एकाग्रवृत्तिआं हि योगहै ॥

पूर्वपक्षी—सत्वगुणका परिणाम आवरणकी निवर्तक जो चित्तवृत्तिआं सो ज्ञानपदका अर्थहै और विशुद्धसत्वगुणका

परिणाम चित्तकी एकाग्रवृत्तिआं योगपदका अर्थहैं ॥

सिद्धान्ती—जाग्रदादिअवस्थामें गुणोंकी तारतम्यका निर्णय योगचन्द्रिकाके अनुबन्धनिरूपणमें सम्यक् कियाहै यदि जिज्ञासा हो तो वहांसें देखलीजिये क्युंकि मुमुक्षुको अति उपयोगी है हेभ्रातः व्युत्थानावस्थामें तमोरजोगुणमिश्रित सत्व-गुणका परिणामहोनेतें चित्तकी अनेकाग्रवृत्तिआंरूप जो ज्ञान होतेहैं वो किञ्चित्आवरणकूं अर समीपस्थ अव्यवहित स्थूल पदार्थोंके आवरणकूं निवृत्त करेहैं और विशुद्धसत्वगुणका परिणाम होनेतें 'एकाग्रवृत्तिआंरूप' योगरूप जो ज्ञान होतेहैं सो सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टपदार्थोंकेभी निःशेष आवरणकूं नष्टकरेहैं इसी हेतुसें इतरज्ञानोंतें योग उत्कृष्टज्ञानरूपहै ॥

पूर्वपक्षी—यदि योग अर ज्ञानका एकहि अर्थहै तो घटपटकटादिकोंका ज्ञानभी योगरूप कहाचाहिये ॥

सिद्धान्ती—अग्रस्थित निरावृत स्थूलपदार्थ जो घट पट कटादिकहैं ऐसे स्थूलपदार्थोंका ज्ञान योगरूप नाहिं कहाहै किन्तु अतीन्द्रियपदार्थोंका जोजो प्रत्यक्षज्ञान होताहै सोसो योगरूप हि होताहै यिह व्यभिचाररहित नियमहै इसहेतुसें 'अत्यन्तसूक्ष्म', अत्यन्तअतीन्द्रिय आत्मपदार्थका प्रत्यक्षज्ञान योगरूप हि होताहै अतः मोक्षहेतु ज्ञानप्रतिपादक श्रुतिआदिकोंसें कोईविरोध नहिं अर्थात् मोक्षलिये मुमुक्षुजनोंको एक योग हि शरणहै सो ज्ञान

रूप हि होताहै ॥ ७ ॥

ऐसे ज्ञानयोगकूं प्राप्तहुए स्वतन्त्रतारूपफल उदय होवेहै यिह अब कहितेहैं—

पूर्णात्मसाक्षाच्छरणागतोयो
ह्यशेषबन्धात्सविमुक्तएव ।
सोऽतोऽखिलार्थेषुभृशं स्वतन्त्रो
नकोपि तत्संयमनेसमर्थः ॥ ८ ॥

टीका--पूर्णआत्माके साक्षात्काररूप शरणकूं जो प्राप्त हुआहै वोही समग्रबन्धतें मुक्तहोवेहै इसीहेतुसें वो आत्मदर्शी पुरुष 'यिहलोक परलोक जीवन्मुक्ति विदेहमुक्तिआदिक' सर्व अर्थोंमें अतिशय स्वतन्त्र होताहै हेभ्रातः इसअर्थमें प्रमाणोंकूं दृष्टान्तोंकूंभी ग्रन्थके आरम्भमें हि लिखचुकाहुं इसहेतुसें तिस जीवन्मुक्त आत्मदर्शीके बन्धनमें प्रारब्धादिक कोईभी समर्थ नहिंहै ॥

पूर्वपक्षी--प्रथम कहैचुकाहुं कि अन्यसर्वअर्थोंमें आत्मदर्शीकी स्वतन्त्रता सत्यसङ्कल्पता हुएभी प्रारब्धरूप प्रतिबन्धक के होते विदेहमुक्तिमें स्वतन्त्रता संभवे नहिं ॥

सिद्धान्ती—प्रारब्ध तो साधारणकारणहै इससें हेभ्रातः प्रारब्ध तो स्वफलसें इतर सर्वअर्थोंका प्रतिबन्धक कहिनाहोगा

इसहेतुसें अज्ञजीवोंकीन्यांई आत्मदर्शीजीवन्मुक्तकी किसीअर्थमें भी स्वतन्त्रता सत्यसङ्कल्पता नहिंहुई चाहिये अर आपनेभी विदेहमुक्तिसें अन्यसर्वअर्थोंमें आत्मदर्शीकी स्वतन्त्रता सत्य सङ्कल्पता कहीहै अर उक्तउपनिषद् वासिष्ट आत्मपुराणादिक प्रमाणोंसेंभी तथा उक्तदृष्टान्तोंसेंभी आत्मदर्शीकी स्वतंत्रता सत्य संकल्पता प्रसिद्धहिहै इससें आत्मदर्शीमें प्रारब्धकी परतन्त्रता माननी योग्य नहिं और जैसे शृंखलबद्ध पुरुषकूं मुक्तपुरुष कहिना अयुक्तहि है तैसे प्रारब्ध 'बद्ध' परतन्त्रपुरुषकूं जीवन्मुक्त कहिनाभी अयुक्तहिहोगा ॥

पूर्वपक्षी---यद्यपि मोक्षशास्त्रोंमें जीवन्मुक्ति स्पष्ट कथन करीहिहै तथापि केईग्रन्थकारोंने जीवन्मुक्तिकूं नहिं माना ॥

सिद्धान्ती—जो जीवन्मुक्तिकूं नहिंमानते उनके मतमें ज्ञान होतेहि तत्काल विदेहमोक्ष होवेहै अर्थात् आत्मसाक्षात्कार हुए तत्कालहि अज्ञानकी अर अज्ञानके कार्य सर्व कर्मशरीरादिकों की निवृत्ति होजातीहै आत्मप्रत्यक्षहुए पीछे प्रारब्धशरीरादिक कुछशेष नहिंरहिता परन्तु यिहमत अयुक्तहिहै क्युंकि इसमतके ग्रन्थरचनेवालेंकोभी आत्मसाक्षात्कार नहिंहुआ, यिह तिनके मतसेंहि सिद्ध होताहै क्युंकि 'आत्मसाक्षात्कारहुए तत्कालहि विदेहमुक्त होजावे है' यिह तिनका मतहै सो विदेहमुक्त तो ग्रन्थ रच नहिंसक्ता इसहेतुसें आत्मप्रत्यक्षहुए विना हि तिनोंने

उक्तमतके ग्रन्थ रचेहैं, यिह अर्थ तिनके मतसेंहि सिद्धहै इस हेतुसें यिहमत प्रामाणिक नहिंहोसक्ता अतः समीचीन नहिं किंतु आत्माका प्रत्यक्षहुए जीवन्मुक्तावस्था होतीहै ॥

पूर्वपक्षी—छान्दोग्यउपनिषद्के—

तस्यतावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथसम्पत्स्यइति

प्र॰ ६ ॥ खण्ड १४ ॥ २ ॥

इसमन्त्रमें आत्मसाक्षात्कारसें पश्चात् शरीरपातपर्य्यन्त प्रारब्धका अवधिकहाहै ॥

सिद्धान्ती—हेमित्र इस मन्त्रमें दृष्टि दीजिये तो प्रत्यक्ष ज्ञानका बोधकपदभी नहिंहै तथा इसमन्त्रमें जीवन्मुक्तिका वा विदेहमुक्तिका वा प्रारब्धका बोधकभी कोईपद नहिंहै अतः अध्याहारसें हि अर्थ करणाहोगा सो स्वेच्छानुसारी अध्याहारकर्के केई प्रकारसें अर्थ होसक्ताहै हेपाठक जिस श्रुतिरूपप्रमाणमें वा सूत्रादिकप्रमाणमें जिसअर्थका बोधक स्पष्टार्थकपद नहिंहै अथवा अध्याहारसें जो अर्थ करियेहै तिसअर्थकी सिद्धिलिये तिसप्रमाणसें तादृशप्रबल प्रमाणान्तरकी अपेक्षा सूक्ष्मबुद्धिमानों को अवश्यं होतीहै अर्थात् प्रकृतअर्थमें कोई होरभी श्रुति वाक्य प्रमाणहै ऐसी जिज्ञासा अवश्यं होवेहै अर आत्म-साक्षात्कारहुएपीछे प्रारब्धकी स्थितिमें होरकोई श्रुतिवाक्यरूप स्पष्ट प्रमाण प्रसिद्धभी नहिंहै ॥

पूर्वपक्षी—इसमन्त्रके भाष्यमें अर शारीरकके चतुर्थाध्याय में प्रथमपादके पञ्चदशेसूत्रके भाष्यमेंभी भाष्यकारोंने तो ज्ञान हुएपीछे प्रारब्धकी स्थिति कहीहै ॥

सिद्धान्ती--सत्यहै परन्तु अपरोक्षानुभूतिमें तो भाष्यकारोंने इसअर्थका सम्यक्खण्डनकराहै अर ज्ञानसें प्रारब्धकी भी निवृत्ति स्पष्टपदोंसें श्रुतिप्रमाण देकर कहीहै देखिये—

उत्पन्नेप्यात्मविज्ञाने प्रारब्धंनैवमुञ्चति ।
इतियच्छ्रूयतेशास्त्रे तन्निराक्रियतेऽधुना ॥

॥ ९० ॥

क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ।
बहुत्वंतन्निषेधार्थं श्रुत्यागीतञ्चयत्स्फुटम् ॥

॥ ९८ ॥

अर्थ—श्रीशङ्कराचार्य्यस्वामी कहितेहैं कि 'आत्माका विज्ञानहुएभी प्रारब्ध नहिंछोडती' यिह जो शास्त्रमें सुना जाताहै सो हमने अब खंडन करियेहै ॥ ९० ॥

'सो परमात्मा प्रत्यक्षहुए इसआत्मदर्शीके कर्म क्षीण होजाते हैं' इसश्रुतिनें प्रारब्धकेभी नाश बोधनालिये कर्मपदमें बहुवचन स्फुट कहाहै हेपाठक देखिये आत्मसाक्षात्कारसें प्रारब्धादि सर्व कर्मोंकी निवृत्तिमें अथर्ववेदकी मुण्डकोपनिषद्क्त मंत्ररूपप्रमाण

देकर आप भाष्यकारस्वामी निरूपण कर्तेहैं ॥

तथा श्रीभगवद्गीतामेंभी ज्ञानसें सर्वकर्मोंका विनाश कहाहै—

यथैधांसिसमिद्धोऽग्नि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेतथा ॥

अ० ४ ॥ ३७ ॥

अर्थ—जैसे प्रज्वलितअग्नि काष्ठोंकूं भस्मकरेहै वैसे हेअर्जुन ज्ञानरूपअग्नि सर्वकर्मोंकूं भस्मकरेहै ॥

पूर्वपक्षी—भाष्यकारोंने कहीं तो ज्ञानहुएभी प्रारब्धकी स्थितिकही है पुनः कहीं ताका खण्डनकर्के ज्ञानसें प्रारब्धकाभी क्षय कहाहै ऐसे तिनविरुद्धवाक्यनकी व्यवस्था करी चाहिये ॥

सिद्धान्ती—तिनविरुद्धवाक्यनकी व्यवस्था तो अपरोक्षानुभूतिमें स्वयंभाष्यकारोंने करीहिहै देखो—

तत्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धंनैवविद्यते ।
अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धंवक्तिवैश्रुतिः ॥

अर्थ—तत्वज्ञानके उदयहुएपर प्रारब्ध नहिंरहिता परन्तु अज्ञानीजनोंके जगानेलिये श्रुति प्रारब्धकूं कहितीहै अर्थयिह 'सर्वव्यवहारका कारण जो अज्ञानहै तिसके नष्टहुए आत्मदर्शीका व्यवहार कैसे होगा' ऐसी अज्ञानीजनोंकी भ्रांतिके निवारण

लिये—

यावन्नविमोक्ष्ये ।

यिहश्रुति प्रारब्धकूं कहितीहै कोई वास्तवसें नहिं कहिती इसप्रकार हेभ्रातृगण इत्यादिकप्रमाण तो आत्मसाक्षात्कारहुए प्रारब्धकी निवृत्तिकूं प्रतिपादनकर्तेहैं और केई ग्रन्थकार प्रारब्ध की भोगसें हि निवृत्ति कहितेहैं परन्तु आत्मसाक्षात्कारहुए प्रारब्धकी निवृत्ति आप मानो वा स्थिति मानो हेभ्रातृवर 'सर्वथा' सर्वप्रकारसेंही आत्मदर्शीकी विदेहमोक्षमेंभी स्वतन्त्रता दूरि नहिं करसकीती क्युं सुनिये—

'ध्यानयोगविना' समाधिविना आत्मसाक्षात्कार नहिं होसक्ता अर्थात् समाधिसेंहि आत्माका ईक्षण होताहै, यिहअर्थ तो श्रुतिस्मृतिआदिक प्रबलप्रमाणोंकी धारासें और नाना युक्तिओसें सिद्ध होचुकाहै ऐसे आत्मसाक्षात्कारवान् परमयोगीन्द्र पुरुष तो कायव्यूहरचनेसें झटिति प्रारब्धका फल भोगकर स्वेच्छासें विदेहमुक्त होसकेहैं तात्पर्ययिह एककालमें नाना शरीररचनेकी शक्ति आरूढयोगीन्द्रमें होतीहै इससें जब कोई कार्यविशेष होवे तो वो आरूढयोगीन्द्र नाना शरीरोंकूं रचकर सो कार्यविशेष करसक्ताहै इसीकूं 'योगिकायव्यूहन्याय' कहितेहैं सो शास्त्रोंमें तथा विद्वज्जनोंमें प्रसिद्धहिहै जैसे महाभारतमेंभी स्पष्ट कहाहै—

आत्मनांचसहस्राणि बहूनिभरतर्षभ ।
योगःकुर्य्याद्बलंप्राप्य तैश्चसर्वैर्महींचरेत् ॥

पर्व १२ ॥ अ० ३०१ ॥ २६ ॥

अर्थ—योगबलकूं प्राप्तहोकर योगीपुरुष बहुत हजारों शरीरोंकूं रचेहै तिन सर्वशरीरोंसें पृथिवीकूं विचर सकेहै ॥

विदितरहै कि जिनशरीरोंकूं योगी रचेहै उस एक एक शरीरमें भिन्नभिन्न चित्तकूं रचताहै इससें योगीरचित बहुत शरीरोंमें योगिरचित चित्तभी 'बहुत' उतनेहि होतेहैं यिहअर्थ पातञ्जलदर्शनके चतुर्थपादमें चतुर्थसूत्रकी योगचन्द्रिकाटीकामें स्पष्ट लिखाहै ॥ २६ ॥

पातञ्जलदर्शनके चतुर्थपादमें पञ्चमसूत्रके व्यासभाष्यकी वाचस्पत्य टीकामेंभी कहाहै श्लोक—

योगीश्वरःशरीराणि करोतिविकरोतिच ।
प्राप्नुयाद्विषयान्कैश्चि त्कैश्चिदुग्रंतपश्चरेत् ॥
संहरेच्चपुनस्तानि सूर्य्योरश्मिगणानिव ॥

अर्थ—योगीश्वर शरीरोंकूं रचताहै अर शरीरोंकूं 'विविध' नानाप्रकारके रचताहै तिनमें केईशरीरोंसें उपदेश भक्ष्य पेयादि विषयोंकूं प्राप्त होवेहै और केईशरीरोंसें उग्रतपकूं करताहै पुनः जैसे सूर्य्यरश्मिओंके समूहकूं संहरणकरेहै तैसे सो योगीश्वरभी

तिनशरीरोंकूं संहरण करतेहैं ॥

जैसे योगीन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रजी रुक्मिणीआदि १६१०८ रानी महारानिओंके गृहोंमें उतनेहि शरीर रचकर रमण कर्तेभै यिह भागवतमें नारदके प्रसंगमें प्रसिद्धहिहै पुनः तिनगृहोंतें निःसरणसमय तिन सर्वशरीरोंकूं संहरण कर्तेभै और जैसे चूडालामहारानीनें महाराजा शिखिध्वजकी परीक्षालिये इन्द्रादि देवशरीरोंकूं रचाथा फिर महावनसें अपनी राजधानीकूं गमन समय महारानीचूडालाने अश्वारूढ गजारूढादि चतुरंगिणीसेना रूप कायव्यूहोंकूं रचाथा ॥

ऐसे योगिकायव्यूहन्यायसें प्रारब्धरूप प्रतिबन्धकके शीघ्र निवारणमें समर्थहोनेसेंभी विदेहमुक्तिमें आत्मदर्शी पुरुषकी स्वतन्त्रताका निषेध कोईभी नहिं करसक्ता ॥

देखिये महाभारतमेंभी कहाहै—

सशीघ्रमचलप्रख्यं कर्मदग्ध्वाशुभाशुभम् ।
उत्तमंयोगमास्थाय यदीच्छतिविमुच्यते ॥

१२ ॥ ३०१ ॥ ४१ ॥

अर्थ—सोयोगी उत्तमयोगकूं आश्रयकर्के पर्वतवत्भी शुभाशुभकर्मनकूं दग्धकर्के यदि चाहे तो शीघ्र मुक्त होसकेहै ॥

इसीमहाभारतश्लोककी टीकाभी देखिये—

यदीच्छतीति योगिनः स्वेच्छया ब्रह्मलोकादौ गमनं विदेहकैवल्यं देहधारणंच दर्शितम् ॥

अर्थ—मूलश्लोकमें यदीच्छति इसकथनसें यिह दिखलायाहै कि योगीका ब्रह्मलोकादिमें गमन और विदेहकैवल्यमोक्ष वा 'देहधारण' जीवन्मुक्तिदशामें शरीरका धारण यिह सर्वअर्थ योगीकी स्वेच्छासें होवेहै अर्थात् योगिके सत्यसङ्कल्पसेंहि शरीरका धारण ब्रह्मलोकादिकमें गमन और विदेहमोक्ष होताहै इति ॥

हेपाठक आत्मसाक्षात्कारसें प्रारब्धादिसर्वकर्मोंकी निवृत्ति होतीहै इसमतमें जो शंका उपस्थित हुईथी कि यदि प्रारब्ध की निवृत्ति मानोगे तो जीवन्मुक्तपुरुषके शरीरका धारण किससें होगा तथा भोजन पानादिक व्यवहारभी किससें होगा सो ऐसी ऐसी सर्वशंकाभी उक्तमहाभारतश्लोकसें अर ताकी टीकासें निवृत्त होगई अर्थात् 'जीवन्मुक्तमहात्माके सत्यसंकल्पसेंहि शरीरका धारण तथा समाधि वा व्युत्थान भोजन पानादिक सर्वव्यवहार सिद्धहोतेहैं' ऐसे प्रमाणसिद्ध उत्तरसें सो सर्वशंका निवृत्तहुई जानिये ॥

पूर्वपक्षी—जीवन्मुक्तिदशामें शरीरके धारणमें, ब्रह्मलोकादिकोंकूं गमनमें, विदेहमोक्षमें, इत्यादिकअर्थोंमें स्वतन्त्रता तो उक्तप्रमाणसें आरूढयोगीके सिद्धहोतीहै कोई योगरहित ज्ञानीके नहिंहोती ॥

सिद्धान्ती—श्रवणमननजन्य परोक्षनिश्चयज्ञानवान् पुरुषों की उक्तअर्थोंमें स्वतन्त्रता नहिंहोती क्युंकि उनमें सत्यसंकल्पता का कोईसाधन नहिं है परन्तु निदिध्यासनकी परिपक्वताजन्य अपरोक्षज्ञानवान्महात्मामें तो उक्तअर्थोंविषयक स्वतन्त्रता होतीहिहै क्युंकि इनमें ध्यानरूप निदिध्यासनकी परिपाकावस्था रूप जो योगहै सो सत्यसंकल्पताका साधन सिद्ध होआहुआहै हेभिन्न यदि निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप समाधि सिद्ध नहिं है तो आत्माका अपरोक्षज्ञानभी नहिं है क्युंकि समाधिविना अतीन्द्रियआत्माका प्रत्यक्ष नहिंहोसक्ता यिहअर्थ प्रबलप्रमाणोंसें युक्तिओंसें सिद्धहोचुकाहै सत्यसंकल्पतारूप अवांतरफलहै जिस का ऐसा जो समाधियोगहै सो योग तो आत्मदर्शी महात्मामें सिद्धहुआहि होताहै इससें आत्मसाक्षात्कारवान् महात्मा तो सत्यसंकल्पतासें उक्त सर्वअर्थोंमें स्वतन्त्रहि होताहै ॥

हेप्रियभ्रातः शरीरादिसर्वअनात्मपदार्थोंसें चित्तवृत्तिओंकूं रोककर्के केवलआत्मामेंहि सदृशवृत्तिओंके प्रवाहका नाम संप्रज्ञातयोगहै पुनः सर्ववृत्तिओंके निरोधहुए संप्रज्ञातयोगरूप आत्म साक्षात्कारके संस्कारमात्रशेषका नाम असंप्रज्ञातयोगहै अर्थात् शरीरादिसर्वअनात्मपदार्थोंकूं विस्मृतकर्के केवल चिदात्मामेंहि चित्तकी संलग्नताका नाम योगहै आश्चर्यहै कि ऐसे योगनामके श्रवणसें क्षोभ क्युं होताहै यदि शरीरादिसर्व अनात्मपदार्थ असत्

जड दुःखरूप निश्चितहैं अर सत्चित्परमानन्दरूप आत्मा प्रत्यक्षहै तो ऐसेअनात्मपदार्थोंकूं विस्मृतकरके परमानन्दआत्मामें चित्तकी परमाविश्रांतिरूप योगसें विरोध क्युं होताहै ॥

प्रबलप्रमाणोंसें युक्तिओंसें सिद्ध होचुकाहै कि आत्म-साक्षात्कार योगरूप हि होताहै इसीहेतुसें यहां महाभारतश्लोकमें और ताकी टीकामें 'देहधारण ब्रह्मलोकादिकोंमें गमन विदेह मोक्ष' इत्यादिकअर्थोंमें योगीकी स्वतन्त्रता कहीहै और ग्रन्थके आरम्भमें जो उपनिषद्के वासिष्टके वाक्यरूप प्रमाण लिखचुका हुं उनमें तो ज्ञानवान्की सर्वअर्थोंमें स्वतन्त्रता कहीहै तथा आत्म पुराणके—

शुद्धचेताः पुमानेष आत्मानमवलोकयेत् ।
ईशवत्सकलंविश्वं कर्तुंहन्तुंप्रभुर्भवेत् ॥

इत्यादि प्रथमलिखितश्लोकोंमेंभी आत्मसाक्षात्कारवान्पुरुष की हि ईश्वरतुल्य शक्ति कहीहै इससें आत्मसाक्षात्कार अर योग एकहि वस्तुहै ॥

पूर्वपक्षी—यिहभी वासिष्टमें लिखाहै कि अणिमामहिमा-ऽऽदि सिद्धिआं अविद्यारूपहैं ज्ञानवान् तिनके पीछे नहिं धावता यिह सिद्धिआं कोई ज्ञानका फल नहिं हैं और यिह अणिमादि सिद्धि कोई श्रेष्ठपदार्थभी नहिंहैं ॥

सिद्धान्ती—सत्यहै योगशास्त्रमैंभी अणिमामहिमादि सिद्धिओंकी कामनाका महामोहनाम कहाहै पुनः योगशास्त्रके—

तेसमाधावुपसर्गा व्युत्थानेसिद्धयः ॥

पाद ३ ॥ सूत्र ३६ ॥

अर्थ—मोक्षफलवाले समाधिमें अनुरक्त योगीको वो अणिमामहिमाऽऽदिक विघ्नरूपहैं व्युत्थानमें अनुरक्त वहिर्मुख योगीको सो अणिमाऽऽदिक सिद्धिआंहैं जैसे जन्मसें दरिद्री जनको अत्यल्पद्रव्यभी महाद्रव्यका संभारहै विदितहो कि आत्मविषयक जो धर्ममेघनामा समाधि सो मोक्षफलवाला समाधिहै हेमित्र इसउक्तसूत्रमेंभी अणिमादिक सिद्धिआं विघ्नरूप हि कहीहैं ॥

यद्यपि धर्ममेघसमाधिकी दृष्टिसें तो सो अणिमादिक तुच्छ वस्तुहैं विघ्नरूपहैं परन्तु जिनकूं स्वानुकूलकरणेलिये मनवाणी शरीरसें प्रयत्नकियेजाते हैं फिर जिनकूं स्वभिन्नमहात्माकी संगति सेंभी जिसकिसी गुप्त वा प्रकट उपदेशसें यथासंभव रोकनेमें यत्न कियेजातेहैं ऐसे सेवक, शिष्य, अर लोकमें ख्याति मान प्रतिष्ठा वा पूजा धन स्थान और ऐहिक शब्दस्पर्श रूपरसादिक पदार्थ तो अणिमादिकोंकी दृष्टिसेंभी अत्यन्त तुच्छ पदार्थहैं बहुत क्या ऐहिकराजे महाराजोंके ऐश्वर्यभी अणिमादिकोंकी दृष्टिसें अतितुच्छहैं हेभ्रातः अत्यन्ततुच्छ मान, प्रतिष्ठा, ख्याति, सेवक,

शिष्यादिकोंमें आसक्तपुरुष यदि अणिमादिकोंकूं तुच्छ कहैं तब उनका कथन तो अत्यन्तहासास्पद हिहै परमपूर्णानन्दसें स्थित आत्मदर्शीपुरुष तो तिन अणिमादिक तुच्छवस्तुओंके पीछे नहिं धावता अर्थात् तिनके सुखभोगलिये संकल्पभी नहिंकर्ता परन्तु वासिष्टमें यिह तो नहिंकहाहै कि आत्मसाक्षात्कारवान्पुरुषके सत्य-संकल्पता सर्वअर्थोंमें स्वतंत्रतारूपऐश्वर्य्य नहिंहोता किंतु वासिष्ट ग्रन्थके—

येहिविज्ञातविज्ञेया वीतरागामहाधियः ॥
विच्छिन्नग्रन्थयःसर्वे तेस्वतन्त्रास्तनौस्थिताः ॥

प्र० ५ ॥ सर्ग ८९ ॥ ६३ ॥

दैवंवापिचकर्माणि प्राक्तनान्यैहिकानिच ॥
वासनावानतेषांत च्चेतोनियमयन्त्यलम् ॥

॥ ६४ ॥

तेनतत्त्वविदांतात काकतालीयवन्मनः ॥
यद्यद्भावयतिक्षिप्रं तत्तदाशुकरोत्यलम् ॥

॥ ६५ ॥

अर्थ लिखचुकाहुं ॥

इत्यादिश्लोकोंमें तथा उक्तउपनिषद्मन्त्रमें आत्मपुराणमें आत्मसाक्षात्कारवान् महात्माकी विदेहमोक्षादिसर्वअर्थोंमें स्वतं-

ऐसा सत्यसङ्कल्पता कहीहिहै हेभ्रातः वहां वासिष्टमें हि देखिये महाराजा शिखिध्वजनें कोई कुंडलिनीआदिकोंका अभ्यासभी नहिंकिया अर चूडालामहारानीके कुंभमुनि मदनिकाऽऽदि कृत्रिम वेषोंकी कथंताके प्रत्यक्षज्ञानका संकल्पभी नहिंहुआ तो महाराजा शिखिध्वजके अतीन्द्रियपदार्थोंके भूतभविष्यद्आदिपदार्थोंके प्रत्यक्षज्ञानकी शक्ति क्या नहिंथी ऐसेनहिं ऐसेनहिं किन्तु शक्ति तो थी परन्तु पूर्णकाम होनेसें संकल्प नहिंहुआ फिर महावन में चूडालाके अकृत्रिमशरीरकूं देखकर अर 'हेराजन् तेरे बोध लिये हि मैने कुम्भमुनिआदिशरीरोंका निर्माण कियाहै सो कुम्भादिकोई अकाल्पनिक नहिंथे हेमहीपते अब तूं विदितवेद्यहैं इससर्ववृत्तांतकूं ध्यानलगाकर्कें शीघ्र देख, ऐसे चूडालाके कथन सें महाराजाशिखिध्वज एकमुहूर्त्त समाधिकर्कें सर्ववृत्तांतकूं देखता भिया तहां श्लोक—

अभिराज्यपरित्यागा च्चूडालादर्शनावधि ॥
सर्वंमुहूर्तध्यानेन चात्मोदन्तंददर्शसः ॥
सर्वमालोक्यभूपालो विररामसमाधितः ॥

॥ प्र० ६ ॥ सर्ग १०९ ॥ १२ ॥

अर्थ—महाराजाशिखिध्वज राज्यके परित्यागसें पुनः वन में चूडालाके दर्शनपर्य्यन्त अपने सर्ववृत्तांतकूं एकमुहूर्त्त ध्यान योगकर्कें देखताभिया । सर्ववृत्तांतकूं देखकर समाधितें निवृत्तहुआ

हेप्रियभ्रातः अतीन्द्रियपदार्थोंका प्रत्यक्ष तो समाधिअवस्थामें समाधिरूपहिहोताहै हेमित्र आत्मा अत्यन्त अतीन्द्रियहै इससें ताका प्रत्यक्ष तो अत्यन्तसूक्ष्मयोगावस्थामें योगरूपहि होताहै यिहअर्थ नानाप्रबलप्रमाणोंसें युक्तिओंसें सिद्धहोचुकाहै इसहेतुसें सत्यसंकल्पतादिक ऐश्वर्य्य तो योगरूप आत्मसाक्षात्कारका अवांतरफलहै अर मुख्यफल तो कैवल्यमोक्षहै हेप्रियभ्रातृवग सिद्धिआं पांचप्रकारकी होतीहैं सो पातञ्जलदर्शनमें कहीहैं—

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाःसिद्धयः ॥

॥ पाद ॥ ४ ॥ १ ॥

अर्थ—जन्मसें, ओषधिसें, मंत्रसें, तपसें, समाधिसें जन्य सिद्धिआं पांचप्रकारकी होतीहैं इनसर्वसिद्धिओंमें समाधिजन्य सिद्धि सर्वोत्कृष्ट होतीहै यिह भगवद्भागवतमेंभी कहाहै—

जन्मौषधितपोमन्त्रै र्यावतीरिहसिद्धयः ॥
योगेनाप्नोतिताःसर्वा नान्यैर्योगगतिंव्रजेत् ॥

॥ स्कन्ध ११ ॥ अ० १५ ॥ श्लो० ३६ ॥

अर्थ—जन्म, औषधि, तप, मन्त्रोंकर जितनीआं यहां सिद्धिआं होवे हैं तिन सर्वसिद्धिओंकूं योगी योगकर प्राप्तहोसके है अर योगकी 'गतिकूं' योगकर प्राप्तहोनेयोग्य पदकूं 'योगतेंअन्य' जन्मओषधितपमंत्रोंकर पुरुष नहिं प्राप्तहोसकता इससें कैवल्य सिद्धिपर्य्यंत सत्यसंकल्पताऽऽदि सर्वसिद्धिओंका हेतु योगहै

आत्मसाक्षात्कारका अंतरंग जो निदिध्यासन सो ध्यानरूपहैं योगकी पूर्वावस्थाहै निदिध्यासनकी दृढपरिपकावस्थारूप योगहै हे प्रियभ्रातः आत्मदर्शी महात्माके तो आत्मदर्शनका अंतरंग ध्यानरूप निदिध्यासनकी परिपाकावस्थारूप समाधियोग सिद्धहुआ हि होता है वो 'समाधि' योग हि सत्यसंकल्पता सर्वअर्थोंमें स्वतंत्रताऽऽदि सिद्धिओंका हेतुहै ऐसा समाधि जिसके सिद्ध नहिंहुआहै अर मोक्षशास्त्रके श्रवणकर मननकर आत्माका निश्चयकियाहै तिस पुरुषके तो समाधिरूप साधनकी असिद्धिसें आत्मप्रत्यक्षरूप 'साध्य' फलभी नहिंहोता तथा अवांतरफलरूप सत्यसंकल्पतादिक सिद्धिआंभी नहिंहोती और जिस महात्मापुरुषके श्रवणमननसें आत्माका 'निश्चय' संशयरहितपरोक्षज्ञानहुआहै तदनन्तर निदि-ध्यासनके अभ्यासकर ताकी परिपाकावस्थारूपसमाधिजन्य संप्र-ज्ञातयोगरूप आत्मसाक्षात्कारहुआहै तिसमहानुभाव आत्मदर्शीके तो समाधियोग सिद्धहोनेसें ताका अवांतरफलरूप सत्यसंकल्पता सर्वअर्थोंमें स्वतंत्रतादिक ऐश्वर्य अवश्यं होवेहिहै क्युंकि अवांतर फलहुएसें अनंतरहि मुख्यफलहोताहै इससें आत्मदर्शीपुरुष तो सर्वअर्थोंमें स्वतंत्र हि होवेहै हेभ्रातृवर्य्य आत्मसाक्षात्कार योग रूप हि होताहै योगावस्थामें दुःखके संबंधसें रहित अत्यन्तपरम सुख प्राप्तहोताहै यिह गीतामें श्रीकृष्णचंद्रजीनेभी कहाहै देखिये–

सुखमात्यन्तिकंयत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्तियत्रनचैवायं स्थितश्चलतितत्त्वतः ॥

अ० ६ ॥ २१ ॥

यंलब्ध्वाचापरंलाभं मन्यतेनाधिकंततः ॥
यस्मिन्स्थितोनदुःखेन गुरुणापिविचाल्यते ॥

॥ २२ ॥

तंविद्याद्दुःखसंयोग वियोगंयोगसंज्ञितम् ॥
सनिश्चयेनयोक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

॥ २३ ॥

अर्थ—जो आत्यन्तिकसुख विषयइन्द्रियोंके संयोगजन्य नाहिं किंतु एकाग्रबुद्धिसें ग्राह्यहै तिसआत्मस्वरूप आत्यंतिकसुख कूं जिसअवस्था*विशेषमें योगी प्रत्यक्षकर्ताहै तिसअवस्थाविशेष कूं योगसंज्ञाका अर्थजानो सो दुःखोंके सम्बन्धसें रहित योगहै जिसअवस्थाविशेषमें स्थितहुआ यिहयोगी आत्मतत्त्वतें चलायमान् नहिंहोता दुःखोंकेसम्बन्धसें रहित तिसअवस्थाविशेषकूं योगसंज्ञाका अर्थ जानो इसप्रकार अगलेवाक्यनकाभी तेईसवें श्लोकके पूर्वार्द्धसें अन्वयहै ॥ २१ ॥

जिसअवस्थाविशेषकूं †लभकर योगी तिससें और अधिक लाभ नहिंमानता अर जिसअवस्थाविशेषमें स्थितहुआ योगी

---

* खास † प्राप्त होकर

शस्त्रप्रहारादिकोंके महान्भी दुःखकर चलायमान नहिंहोता दुःखोंके सम्बन्धसेंरहित तिसअवस्थाविशेषकूं योगसंज्ञाका अर्थ जानो ॥ २२ ॥

शास्त्र और आचार्य्योंके वचनोंका अर्थ सत्य हि होताहै ऐसे निश्चयकर अनिर्विण्णकहिये पश्चात्तापसेंरहित अर्थयिह 'इतनेकालके प्रयत्नकर योग सिद्धनहिंहुआ तो इससें परे क्या कष्टहै' ऐसे पश्चात्तापसेंरहित चित्तसें अर्थात् इसजन्ममें वा जन्मांतरमें योगसिद्ध होवेहिगा शीघ्रताकर क्या प्रयोजन सिद्ध होताहै ऐसे धैर्य्ययुक्त चित्तसें सो उक्तफलवाला योग अभ्यास करणेयोग्यहै ॥ २३ ॥

दुःखोंके संबंधसेंरहितहुआ परमानन्दकूंप्राप्त आत्मदर्शी महात्मापुरुष यिहलोक परलोक जीवन्मुक्ति विदेहमुक्तिआदि सर्वअर्थोंमें स्वतंत्र होताहै इससें भुवनत्रयमें पूज्यजनोंसेंभी परम पूज्यहै अतः ताको नमस्काररूप मङ्गलप्रधानश्लोक अब कहिते हैं—

देवाग्र्यैरपिपूजिताङ्घ्रिजलजैः
पूज्योऽलमात्मेक्षणः ।
पूज्यैश्चापितपोधनैर्ऋतबलै
र्ब्रह्मर्षिराजर्षिभिः ॥

नागेन्द्रैश्चमहाविषैर्दितिसुतै
रत्यन्तशौर्य्योद्भटै
र्योऽसौतम्प्रणमामिबोधजलधिं
नाथान्ततेजोऽभिधः ॥

॥ ९ ॥

टीका—भक्तजनोंसें पूजितहै चरणकमल जिनके ऐसे श्रेष्ठदेवतोंकरभी जो 'यिह' प्रकृत आत्मदर्शी अत्यन्त पूज्यहै और सत्यबलवाले तपोधन जगत्में पूज्य ब्रह्मर्षि राजर्षिओंकरभी जो आत्मदर्शी अत्यन्तपूज्यहै और महाविषधर तक्षक वासुकिआदि नागेन्द्रोंकरभी तथा अत्यन्तशूरतासें श्रेष्ठ दैत्यादि असुरोंकरभी जो 'यिह' प्रकृत आत्मदर्शी अत्यन्तपूज्यहै तिस ज्ञानके समुद्र आत्मदर्शीपुरुषकूं मैं तेजोनाथ प्रणामकर्ताहुं ॥ ९ ॥

अब श्रीगुरुगोरक्षनाथजीको नमस्काररूप मङ्गलमयश्लोक कहियेहै—

आसक्ताविषयेष्वहर्निशमहो
राज्याभिभाराकुला ।
नूनंयेचपलेवलोलमनसो
भूपाअपीहेदृशाः ॥
यस्यानुग्रहमात्रतोहिसहसा